डाक पंजीयन क्र. : म.प्र./भोपाल/367/2024-26
आर.एन.आई. क्र. : 56428
टाइटिल कोड : MPHIN 09566
प्रेषण : प्रतिमाह दिनांक 7-8
वर्ष 37 अंक 02
(मानस समाचार/मानस भारती सहित)

प्रकाशन दिनांक 05 नवम्बर 2025
वर्ष 52 अंक 11
कार्तिक -अगहन मास 2082
पृष्ठ संख्या 36
मूल्य 20/-

तुलसी मानस भारती

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की अध्यात्म, संस्कृति और संस्कार पत्रिका

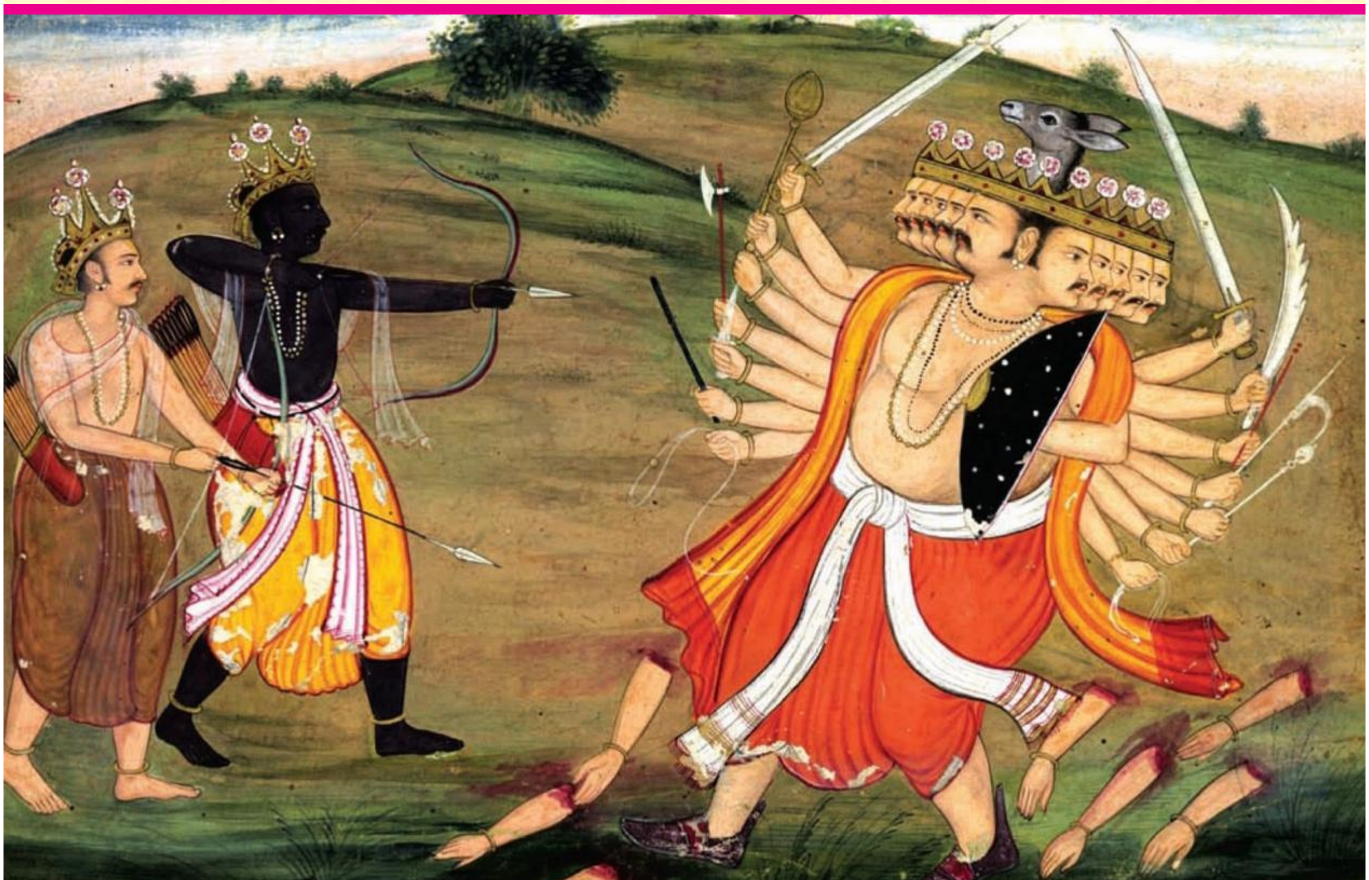

सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयंम् ।।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान एवं
महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् के संयुक्त तत्वाधान में
स्वामी अनुभवानंद सरस्वती के सान्निध्य में

सप्त दिवसीय तत्त्व चिंतन माला

स्वामी अनुभवानंद जी महाराज का सम्मान करते हुए तुलसी मानस प्रतिष्ठान एवं
महर्षि अगस्त्य संस्थानम् के पदाधिकारी

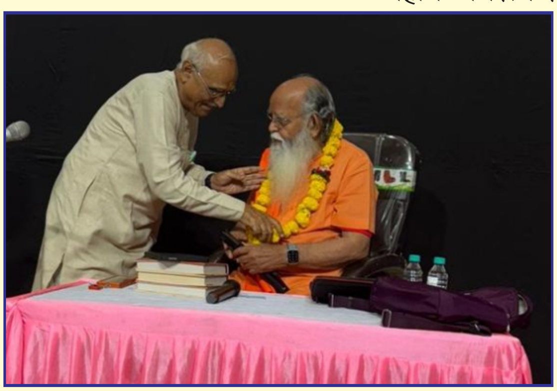

स्वामी जी का स्वागत करते हुए
तुलसी मानस प्रतिष्ठान के कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा

स्वामी जी का स्वागत करते हुए
सेज प्रमुख श्री संजीव अग्रवाल

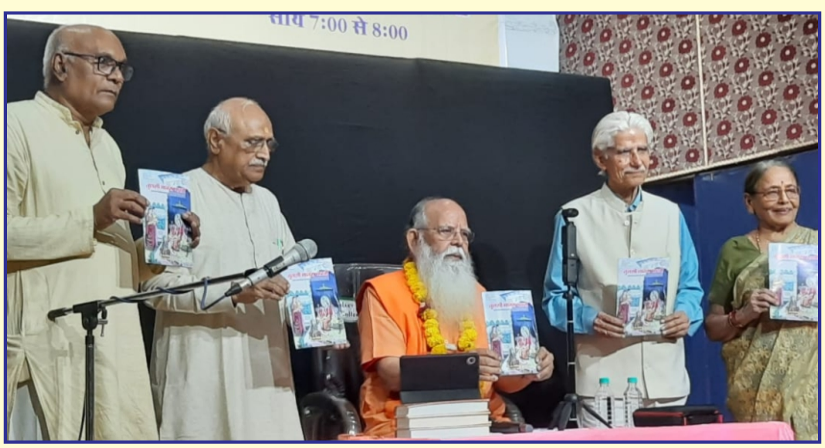

तुलसी मानस भारती का लोकार्पण करते हुए स्वामी अनुभवानंद सरस्वती जी।
उपस्थित मानस भवन के पदाधिकारीगण

पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय मध्यप्रदेश द्वारा समस्त पंचायतों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के लिए, शिक्षा विभाग द्वारा समस्त महाविद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/हाई स्कूलों, शिक्षा महाविद्यालयों, बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य स्तरीय संस्थाओं तथा केन्द्रीय एवं जिला पुस्तकालयों के लिए, स्थानीय शासन विभाग द्वारा नगर निगमों एवं नगर पालिकाओं के लिए तथा आदिमजाति कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी शालाओं के लिए स्वीकृत। उ.प्र. शासन द्वारा जिला पुस्तकालयों एवं वाचनालयों के लिए अनुमोदित।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की मासिक मुखपत्रिका

तुलसी मानस भारती

संस्थापक

पं. गोरेलाल शुक्ल

http://webmail.manasbhawanbhopal.com/

संपादक मंडल

रघुनंदन शर्मा

प्रकाशक

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

raghunandanbjp@gmail.com

प्रभुदयाल मिश्र

प्रधान संपादक

तुलसी मानस भारती

prabhu.d.mishra@gmail.com

राजेन्द्र शर्मा

संयोजक, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

sharmarajendra8june@gmail.com

कैलाश जोशी

सचिव,तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

kailashjoshi58@gmail.com

देवेन्द्र कुमार रावत

संपादक

सहसचिव, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

dkmrawat@gmail.com

परामर्श

विजयदत्त श्रीधर, रमेश शर्मा, माधव सिंह दांगी

ग्राहक शुल्क : वार्षिक रु. 250.00, पंचवर्षीय रु.1100.00, आजीवन रु. 2500.00 इस अंक का रु.20.00

विदेश में : फिजी आयरलैण्ड, मॉरीशस व अन्यत्र समुद्री डाक से (भारतीय रुपये में) वार्षिक रु. 1250.00, पंचवर्षीय रु. 5000.00 आजीवन रु. 12500.00, हवाई डाक से वार्षिक रु. 1500.00 पंचवर्षीय रु. 6000.00 आजीवन रु. 15000.00

पंजाब नेशनल बैंक खाता क्र. 1276000100137956 आईएफसी कोड PUNBO127600

सम्पर्क : तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002, दूरभाष : 0755–2661196, 2660010

tulsimanasbharati@gmail.com *www.manasbhawanbhopal.com*

अनुक्रमणिका

निर्वचन

गाँधीत्व : एक सहयात्रा — प्रभुदयाल मिश्र — 03

आलेख

सतीत्व की रक्षा करना पुरुषों का परम धर्म — देवेन्द्र कुमार रावत — 05

श्री राम मंदिर संघर्ष की फलश्रुति — कैलाशचंद्र पंत — 09

दुर्लभ शोध सामग्री

तुलसीदास जी के गुरु नरहरि जी — लोकनाथ द्विवेदी — 09

शोधात्मक

कृष्ण गीतावली — डॉ. गंगाप्रसाद बरसैयां — 16

कविता

दीप गीत — पं. गिरिमोहन गुरु — 20

आलेख

शरणागति और प्रेम — रंजना शर्मा — 21

पुस्तकायन

रामायण की संस्कृति और गो. तुलसीदास जी का संदर्भ — डॉ. विश्वास पाटिल — 22

कृति समालोचन

रामचरितमानस की विचार संपदा — संतोष खन्ना — 28

समीक्षा

गो. तुलसीदास के समकालिक दुर्लभ काव्य कृति — प्रभुदयाल मिश्र — 31

प्रतिष्ठान समाचार — 33

बृहत्संहिता

रवौ प्रभाते यः कुर्यात् कर्म तद्भवति दीप्तिमत्। सोमदिनं सौम्यकर्मणि, भौमे युद्धे शुभप्रदम्।।
बुधे व्यपारविज्ञाने, बृहस्पतौ गुरौ शुभम्। शुक्रे काले रतिप्रीतौ, शनौ कर्मसु संयमः।।

सप्ताह के सात दिनों के महत्व के संबंध में बृहत् संहिता कहती है कि, रविवार प्रभात काल का कार्य तेज में वृद्धिकारी, सोमवार सौम्यकार्य हेतु और मंगलवार युद्ध तथा शल्य क्रिया आदि, बुधवार व्यापार, गुरुवार शिक्षा, शुक्रवार प्रेम तथा शनि कर्म क्षेत्र में प्रवृत्ति हेतु योग्य है ।

निर्वचन

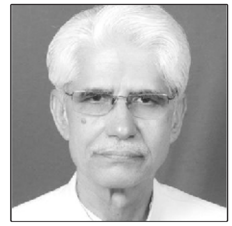

गाँधीत्व : एक सहयात्रा

महात्मा गांधी की भाव भूमिका में ईशावास्य उपनिषद् का यह मंत्र सर्वथा स्मरण योग्य है–

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

यह समस्त जगत अपनी गतिशीलता पूर्वक ईश्वर परिव्याप्त है। इसलिए, त्याग की भावना से इसका उपभोग किया जाना योग्य है। किसी वस्तु का लोभ मत करो, क्योंकि यह समस्त संपदा ईश्वर की ही है।

जेल में विनोवा भावे के साथ रहते हुए महात्मा गाँधी जी ने उनसे ईशावास्य उपनिषद् समझा था और इसके ट्रस्टीशिप के बोध को प्रसिद्ध अमरीकी विचारक थोरो के विचार के परिष्करण पूर्वक उन्होंने अपने राष्ट्र दर्शन की आधार भूमिका प्रदान की थी ।

जिस प्रकार बाली ने श्री राम द्वारा उसे अमरत्व प्रदान करने के आश्वासन के बाद भी अपने अंतकाल में राम का स्मरण ही वरेण्य पाया, बापू के इसी भाव की पृष्ठभूमि में उनकी परम गति का दुर्लभ दृष्टांत हमारे सामने आज भी प्रत्यक्ष ही है। इसके पूर्वाभास संबंधी उन्होंने कल्याण, गीता प्रेस गोरखपुर के तत्कालीन संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार को इसके पूर्व लिखे अपने पत्र में लिखा था – कि राम नाम तो मेरी नित्य, निरंतर खुराक है। अतः मृत्यु के भय से मेरे राम नाम के जप का परामर्श प्रासांगिक नहीं रह जाता।'

गीता में भी 8 वें अध्याय के श्लोक 5 में भगवान कृष्ण कहते हैं –

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

जो पुरुष अन्तकाल में मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे ही भाव को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

बापू की राम नाम निष्ठा का एक और प्रसंग बहुधा स्मरण में आता है। मैथिली शरण जी गुप्त के 'उर्मिला' महाकाव्य की पृष्ठभूमि में किसी समालोचक के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' का प्रायः उल्लेख किया जाता है। इसी भाव भूमिका में जब 'राष्ट्र कवि' ने उर्मिला पुस्तक गांधी जी को भेज कर उनकी टिप्पणी चाही तो उन्होंने इस महाकाव्य की तुलसी की रामायण से तुलना के प्रस्ताव को ही जैसे खारिज कर दिया।

महात्मा गांधी की आलोचना की यत्र तत्र अनेक भूमिकाएँ बनती और बिगड़ती रही हैं। इतिहास को खोद कुरेद कर कालांतर की घटनाओं से गांधी जी की अति आग्रहशीलता और उनकी एकोन्मुखता की आलोचना की जाती है।

यह पूछा जाता है कि वे अपने स्वयं के विश्वास, निष्ठा और प्रतीति को परिवार, समाज, देश और मानव मात्र पर कैसे आरोपित कर सकते थे ? यदि हम इसे गांधी जी की संनिष्ठा या सत्य–निष्ठा कहते हैं तो इसे काल सापेक्ष मान कर जैसे एक भूल ही करते हैं। इतिहास और काल एक तात्कालिक सत्य की गवाही देता है, वह जैसे निर्णयकर्ता नहीं है। व्यक्ति, इतिहास और समय सापेक्ष सत्य शाश्वत फिर भी नहीं हैं। एक संघर्षशील महापुरुष मूल्यों के लिए स्वयं को प्रायः दांव पर लगाता चलता है। कभी–कभी तो वह ऐसा करते हुए इस परीक्षा से भी चूक जाता है कि ये मूल्य कितने निरपेक्ष और टिकाऊ हैं। हमारे देश में अनादि काल से ही शास्त्रार्थ की परंपरा है। पराजित शास्त्रज्ञ विजेता के शिष्यत्व को भी स्वीकारने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। इसमें महत्वपूर्ण बात शास्त्र, वेद के प्राधान्य की रहती है। इसका परिणाम इसलिए उचित कहा जा सकता है क्योंकि इससे व्यक्ति के स्थान पर संस्था, शास्त्र (वर्तमान संदर्भ में इसे हम संविधान कह सकते हैं) की प्राथमिकता प्रकट होती है। मुझे इस विचार प्रक्रिया का उपसंहार महाभारत के इस श्लोक से करना उचित प्रतीत होता है –

कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी।
भुवि धर्मश्च धर्मज्ञ तस्मान्नात्यन्तमाचरेत्।।

अर्थात् हे धर्मज्ञ (युधिष्ठिर)! यह काल असीम है और पृथ्वी अपार है। धरती पर धर्म भी विद्यमान है। इसलिए मनुष्य को किसी भी बात में अति, अतिरेक और आग्रहशीलता से नहीं चलना चाहिए।

प्रभुदयाल मिश्र
प्रधान संपादक
8839319901

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा।।

जो व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप (आत्मा) को जानकर भी उसे अन्यथा (शरीर, मन, अहंकार आदि) समझता है, वह आत्मा का अपहरण करने वाला चोर है।क्या उसने पाप नहीं किया है?

सनत् सुजातीय (महाभारतम्)

सतीत्व की रक्षा करना पुरुषों का परम धर्म

देवेन्द्र कुमार रावत

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में सती अनसूया जी, भगवती सीताजी को पातिव्रत धर्म की शिक्षा देती है जिसे मानस में नारी धर्म के रूप में भी जाना जाता है। किन्तु इस प्रसंग के माध्यम से अनसूया जी ने नारी धर्म की शिक्षा के साथ–साथ पुरुष धर्म की ओर भी संकेत दिया है कि किसी स्त्री के पातिव्रत धर्म को छल या बल से भंग करने का दुष्परिणाम पुरुषों को भी भोगना पड़ता है। वर्णन आया है–

पतिवंचक परपति रति करई। रौर व नरक कल्प सत परई।।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होई पाइ तरुनाई।।

अर्थात् जो स्त्री पति को धोखा देकर पराये पुरुष से रति करती है वह तो सौ कल्प रौरव नरक में पड़ी रहती है। ऐसी स्त्री जो पति के प्रतिकूल चलती है वह अगले जन्म में जहाँ जन्म लेती है वही भरी जवानी में ही विधवा हो जाती है। यहां किसी स्त्री के विधवा होने का अर्थ उसके पति की युवा अवस्था में ही मृत्यु होना है। तब प्रश्न उपस्थित है कि वह पुरुष कौन है ? जिसे युवावस्था में ही अकाल मृत्यु का दण्ड मिलता है। कर्मफल सिद्धांतानुसार ऐसा पुरूष वही हो सकता हैं जिसने पूर्वजन्म में परपत्नी से रति की हो। तभी उसे वर्तमान में अमर्यादित शारीरिक संबंधों का अभिशाप भोगना पड़ता है। अनसूया जी के इस कथन की प्रमाणिकता वर्तमान संदर्भ में भी देखें तो युवा स्त्रियों की तुलना में युवा पुरुषों की असाध्य बीमारियों, आत्महत्या और दुर्घटनाओं से होने वाली मृत्युदर अधिक होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार युवावस्था में पुरुषों की मृत्यु दर महिलाओं की तुलना में अधिक होने से अनसूयाजी की इस चौपाई के अर्थ की पुष्टि भी होती है किन्तु इसमें वे पुरुष नहीं आते हैं जिन्होंने परहित के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया हो। वे तो वीरगति प्राप्त होने से वन्दनीय हैं और परमधाम के अधिकारी भी तथा वे स्त्रियाँ भी जो सहर्ष मातृभूमि पर अपने सुहाग को समर्पित कर देती है। संतों ने तो ऐसी सती स्त्रियों की महिमा गायी है क्योंकि ये मन वचन और कर्म से सदा सतीत्व में ही स्थित

रहती है। किन्तु संतों ने जिन स्त्रियों का मन वश में न हो उनसे बचने की सलाह भी बार–बार दी है कि इनकी माया के प्रभाव से साधारण मनुष्य तो छोड़िए मुनिगण भी नहीं बच पाते हैं– मानस में वर्णन आया है–

सोइ मुनि ग्यानिधान
मृगनयनी विधि मुख निरखि,
बिबस होइ हरिजान
नारि विष्णु माया प्रकट।

अर्थात् वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी के चन्द्र मुख को देखकर विवश हो उसके अधीन हो जाते हैं। हे गरूड़ जी! साक्षात् भगवान की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है। यहां कागभुशुण्डि जी पक्षिराज गरूड़ के इस प्रसंग के माध्यम से स्त्रियों के प्रति पुरुषों को ही सावधान करते हैं, स्त्रियों को नहीं। वे जानते हैं कि जो पातिव्रत धारण करने वाली स्त्रियाँ हैं वे तो अपने मन को वश करने में इतनी अडिग रहती है कि उन्हें कोई भी पुरुष ड़िगा नही सकता है। इनके मनोनिग्रह के संबंध में मानस में वर्णन आया है–

डगइ न संभु सरासन कैसे।
कामी वचन सती मनु जैसे।।

अर्थात् शिवजी का वह धनुष जो सीताजी के स्वयंवर में दस हजार राजा भी नहीं उठा सके थे जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन भी चलायमान नहीं होता है। वे तो केवल अपने पति के प्रति ही समर्पित रहकर संसार मे सुखोपभोग करती हई परमगति को प्राप्त होती है किन्तु जो पुरुष परस्त्री के प्रति अपने मन को रोक नहीं पाते हैं वे न केवल स्वयं पतित होकर नष्ट हो जाते हैं, बल्कि अपने कुल की समाप्ति का कारण भी बनते हैं। लंकेश रावण की पत्नी मन्दोदरी रावण से यही कहती हैं–

तव कुल कमल विपिन दुखदाई।
सीता सीत निसा सम आई।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।

अर्थात् मन्दोदरी कहती है नाथ! सीता आपके कुल रूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आयी है। हे नाथ! सुनिये, सीता को दिये बिना भगवान शंभु और ब्रह्माजी भी आपकी कोई सहायता नहीं कर सकते हैं। यहां मन्दोदरी का यह आशय है कि यह ऐसा दुष्कृत्य है जिसे करने वाले को स्वयं विधाता और विधाता के लेख को पलटने वाले भगवान शिव भी क्षमा नहीं करते हैं। विभीषण ने भी भाई रावण को समझाते हुये यही कहा है–

जो आपन चाहें कल्याना
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना
सो परनारि लिलार गोसाईं
तजउ चउथि के चंद्र की नाईं।।

अर्थात् विभीषण कहते हैं कि जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश सुबुद्धि, शुभगति, और नाना प्रकार के सुख चाहता हो वह हे स्वामी! परस्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा के समान त्याग देना चाहिए क्योंकि चौथ का चन्द्रमा श्रापित है जिसे देखना स्वयं के लिए अनिष्ट को ही आमंत्रित करना है। इस अर्थ में प्रायः पुरुष की दृष्टि सबसे पहले सुन्दर स्त्री के चेहरे पर ही जाती है। तो जहाँ अपनी धर्मपत्नी को देखना शुभ है वही परस्त्री के ललाट को कुदृष्टि से देखना महा अनिष्टकारी है। मानस में वर्णन आया है–

अनुज वधु भगिनी सुतनारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कृदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई।।

अर्थात् मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता है।

यहां भगवान श्रीराम बालि वध के माध्यम से समाज को संदेश देते हैं कि यदि घर परिवार और समाज में हम स्त्रियों को काम भाव से देखने लगे तो संसार में अनाचार, भय और हिंसा व्याप्त हो जायगी। ऐसे अमर्यादित जीवन से फिर वर्णशंकर कुल घातक संतान उत्पन्न होती है जो अपने मातृ–पितृ कुलों के तर्पण की अधिकारी भी नहीं होती। जिससे पितर रुष्ट होकर उस कुल को नष्ट कर देते है। इस संदर्भ में हम श्राद्ध कर्म द्वारा अपने पितरों को पित्तृपक्ष में अपने शास्त्रानुसार आव्हान कर उन्हें जल देते हैं, तथा उन्हें भोग लगाकर तृप्त करते हैं हमारी श्रद्धा से प्रसन्न होकर वे हमारे परिवार को आशीर्वाद देते हैं किन्तु यह पितृपूजन का विधान उन्हीं का होता है जो उस कुल के हों। वर्णन आया है कि, प्रत्येक मनुष्य की संतान में छप्पन अंश पितरों के होते है। तब अनैतिक रूप से उत्पन्न संतान कैसे उसे कुल के पितरों के तर्पण की अधिकारी हो सकती है? वह जब तर्पण करेगी तो उसके तर्पण का अंश उसके अंशज पिता और पूर्वजों को ही जायेगा। इससे इस कुल के पितर रूष्ट होकर ऐसे परिवारों को शाप देते हैं इनमें श्रापित वे भी परिवार होते है जो शास्त्र के विधानुसार श्राद्धकर्म नहीं कर पाते। अतः स्वयं तथा कुल की कुशलता के लिये सतीत्व की रक्षा करना पुरुषों का परम धर्म है। इस धर्म के पालन से ही समाज तथा संसार में सुखशान्ति और समृद्धि बनी रह सकती है। अनसूयाजी ने सीताजी से यही कहा है–

सुन सीता तव नाम, सुमरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम, कहिउ कथा संसार हित।।

अर्थात् हे देवी! सीता सुनो, तुम्हारा तो नाम ही लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म का पालन करेगीं तुम्हें तो श्रीराम प्राणों के समान प्रिय है, यह पातिव्रत धर्म की कथा तो मैंनें संसार के हित के लिए कही है। इस संदर्भ में यदि हम त्रेतायुग के श्रीरामराज्य की विशेषताओं के वर्णन में देखे तो वहां भी स्त्रियों के पातिव्रत पालन के साथ–साथ पुरुषों के भी एक पत्नीव्रती होने का भी उल्लेख आया है

एक नारि व्रत रत सब झारी।
ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

अर्थात् सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली है।

यही कारण था कि त्रेतायुग में प्राकृतिक अनुकूलता के साथ दैहिक, दैविक और भौतिक ताप मनुष्यों को नहीं व्यापते थे। सती नारियों के तप के प्रभाव से किसी की भी अल्प मृत्यु नहीं होती थी वर्णन आया है –

अल्पमृत्यु नहि कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।।

अर्थात् सभी पूर्ण आयु को प्राप्त होते थे। सभी सुन्दर और निरोगी जीवन व्यतीत करते थे। पति की आयु के संबंध में तो वर्णन आया है कि किसी सती का पति यदि अनाचारी भी है तो उसके तपबल के प्रभाव से वह अजेय होता है। मानस में सती वृन्दा और उनके पति जालंधर का प्रसंग इसका उदाहरण है कि जालंधर जैसे राक्षस का वध करने के लिए स्वयं प्रभु को वृन्दा से छल करना पड़ा। वर्णन आया है–

छल कर टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब जानेऊ मरम, तब, श्राप कोप करि दीन्ह।।

अर्थात् प्रभु ने छल से वृन्दा का व्रत भंग करके

देवताओं का कार्य किया। किन्तु संसार हित के संदर्भ में यह किये गये छल का शाप भी प्रभु को लगा। भगवान श्रीविष्णु ने भी सतीत्व की महिमा शिरोधार्य कर स्वयं शालिग्राम के रूप में सती वृन्दा के दूसरे रूप तुलसी से न केवल विवाह किया बल्कि यह वरदान भी दिया कि तुलसी का पौधा सुख, समृद्धि देने वाला होगा तथा तुलसी हरिप्रिया के रूप में सदा पूजनीय होगी। किन्तु इस प्रसंग में भी वृन्दा के पति तो एक नहीं अनेक स्त्रियों के पातिव्रत भंग का भी दोषी था। इससे स्पष्ट है कि वृन्दा ने पातिव्रत धर्म का एकपक्षीय अर्थ अंगीकार किया, जिसके कारण उनके तप बल से ही संसार में अनाचार, आतंक और भय फैल गया था।

अतः इस प्रसंग के निष्कर्ष में अनसूया जी का यह कथन कि सतीत्त्व का सही अर्थ समझने के लिये देवी सीता तुम ही आदर्श हो, तथा तुम्हारे सतीत्व के अनुसरण में ही संसार का हित निहित है। जो पुरूषों के लिए भी आदर्श है।

महेंद्रा स्कावयर्स, फ्लेट नं. 107 बावडिया कला भोपाल
मो. नं. 9893119507

राममुद्रा महाराजाधिराज श्रीरामके शासन का राजकीय चिह्न है। इसमें श्वेताक्षरों में अंकित 'राजा राम' यह शब्द स्पष्ट रूपसे दिखायी देता है। आनन्द रामायण के राज्यकाण्ड में इसकी निर्माण–विधि तथा इसके आराधनीय स्वरूप का भी वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ बताया गया है कि–

राममुद्रां विना कस्य साकेते शस्त्रधारिणः।
नैवासीत् सुप्रवेशश्च रामराज्ये कदाचन्।।
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः।
राममुद्रांकितं पत्रं गृहीत्वा ते नृपोत्तमाः।।
गमनागमने चकुर्भूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः।

श्रीरामके शासनकाल में कोई भी शस्त्रधारी व्यक्ति राम मुद्रा से अंकित पत्र को लिये बिना कभी भी अयोध्या राज्य में प्रवेश नहीं पा सकता था और बिना मुद्रा को दिखाये, किसी का भी राज्य से बाहर निकलना सम्भव न था। यहाँ तक कि श्रीराम के अधीनस्थ नरेश भी राममुद्रा को लेकर सम्पूर्ण पृथ्वीमें कहीं भी बिना रोक–टोक के आ–जा सकते थे।

प्रो. बालकृष्ण कुमावत

कैलाशचंद्र पंत

श्रीराम मंदिर संघर्ष की फलश्रुति

हिन्दी के प्रख्यात आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के मानस का गहराई से समर्थन करने के बाद तुलसी की विशेषता को निरूपित करते हुए लिखा था कि उन्होंने शील, शक्ति और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के साथ एक मर्यादा पुरुषोत्तम का बिम्ब खड़ा किया। उस बिम्ब को भारत के करोड़ों आस्थावादियों ने अपना इष्ट मानकर अपना आराध्य बना लिया।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि श्रीराम जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादा बनाए रखते हैं और कहीं भी उन्हें तोड़ते या उल्लंघन नहीं करते। इसीलिए भारतीय संस्कृति में मर्यादा का पालन एक आवश्यक तत्व बन गया। यह मर्यादा ही है जो मनुष्यत्व से देवत्व का मार्ग बनाती है। मर्यादाविहीन आचरण करने वाली जातियां इतिहास के पन्नों से लुप्त हो जाती है। मर्यादा का पालन करते हुए ही कोई समाज सुगठित और संस्कारशील होकर मानव का मार्गदर्शन कर सकता है।

दुर्भाग्य से भारत में ऐसा समय आया जब विदेशी आक्रान्ताओं ने समाज के इस मूल तत्त्व को छिन्न–छिन्न करने की कोशिश की। ठीक है कि हिन्दू समाज ने प्रतिरोध किया और देश का काफी कुछ श्रेष्ठत बचाया, फिर भी इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि शक्ति का केन्द्र हिलने लगा था। यवनों के बाद अंग्रेजों ने हमारी आस्था की मूल जड़ों पर प्रहार किए। उन सभी का परिणाम था कि हमारे अनेक आस्था केन्द्रों को ध्वस्त कर दिया गया और समाज असहाय सा सब देखता रहा।

इस बात को समझ कर ही हमारे देश के साधु–सन्तों के साथ कुछ राजाओं ने भी मर्यादा के सर्वोच्च शिखर श्रीराम की जन्म भूमि को प्राप्त कर मर्यादा की स्थापना के लिए पाँच सौ वर्षों तक लगातर इंतजार किया। अन्ततोगत्वा 2021 में हिन्दू समाज का संघर्ष सफल हुआ जब श्रीराम लला का विग्रह स्थापित हुआ। आज अयोध्या का भव्य राम मंदिर उस सामाजिक मर्यादा की आवश्यकता का संकेत कर रहा है जिसके श्रीराम प्रतीक पुरूष है। यह सामाजिक विमुखता की ओर बढ़ते समाज को

रामोन्मुख करने के लिए संजीवनी बन गया।

कहने या प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि जो लोग राम के होने से इंकार करते थे उनमें से अधिकांश अपने परिवारों के साथ जाकर श्री राम को अपना प्रणाम निवेदित कर रहे हैं और कुछ लोगों की बोलती बन्द है। हमारी पीढ़ी निस्संदेह भाग्यशाली है कि उसे श्रीराम के 'ब्रह्मत्व' को समझने का अवसर मिला है। मंदिर तो एक प्रतीक था। मुख्य बात उससे जुड़ी आस्था थी वे सांस्कृतिक मूल्य थे जो भारत को विश्व गुरू की मान्यता दिला सके।

श्रीराम को वनवास हुआ। वे समस्त राजकीय चिन्हों को त्यागकर पैदल वन में भटकते रहे। भारत की विभिन्नताओं का अध्ययन करते रहे। सबके साथ खुलकर मिले और देश की परिस्थितियों को समझा। आश्रमों में रहने वाले ऋषि मुनियों से मिले और उनका सन्तत्व भी समझा। वन में लगे हड्डियों के ढेर देखकर असुर संस्कृति की बढ़ती हुई ताकत के दुष्परिणाम का आकलन किया। तभी तो प्रतिज्ञा की कि धरती को निश्चर विहीन करूंगा। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति करते हैं और आसुरी शक्ति के प्रतीक महाबली रावण को पराजित करते हैं। इस युद्ध के लिए उन्होंने देश के राजाओं से सैन्य सहायता नहीं मांगी। बल्कि स्थानीय जातियों को संघर्ष के लिए संगठित किया। यह समाजिक उत्कर्ष का सर्वथा नया प्रयोग था। आसुरी शक्तियों की तमाम चाल बाजियों का नाकाम कर दिखाया।

श्रीराम मंदिर की संघर्ष गाथा सिर्फ एक मंदिर के पुनर्निर्माण तक सीमित नहीं है। यह एक प्रतीक के आदर्शों के विरुद्ध चुनौती खड़ी करने वालों से सतत् संघर्ष की प्रेरणा देने वाली गाथा है। आज उन शक्तियों के उन्मूलन की सामाजिक इच्छा शक्ति पूरे समाज को नई ऊर्जा दे रही है। समाज आत्मविश्वास से लबालब भरा हुआ है। आवश्यकता है कि नवीन परिस्थितियों में हम अपने आदर्शों से विचलित न हों और आसुरी शक्तियों को समाप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा हों।

मंत्री संचालक हिन्दी भवन भोपाल

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

भर्तृहरि, नीति शतक 19,

कंगन मनुष्य की शोभा नहीं बढ़ाते, न ही चन्द्रमा की तरह चमकते हार, न ही सुगन्धित जल से स्नान। देह पर सुगन्धित उबटन लगाने से भी मनुष्य की शोभा नहीं बढ़ती और न ही फूलों से सजे बाल ही मनुष्य की शोभा बढ़ाते हैं। केवल सुसंस्कृत और सुसज्जित वाणी ही मनुष्य की शोभा बढ़ाती है।

तुलसीदास जी के गुरु नरहरि जी

पुण्यश्लोक लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी'

गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु कौन थे, इस पर मी मतभेद है। नाभादास जी ने भक्तमाल में इसका कोई उल्लेख नहीं किया और प्रियादास ने 'भक्त रस बोधिनी, टीका में लिखते हुए एकाध छन्द में कहीं उनके गुरु के नाम तथा सम्प्रदाय के विषय में कुछ संकेत दिया है। इधर व्यवस्थित रूप से तुलसीदास जी की जीवनी पर प्रकाश डालने का सर्वं प्रथम प्रयत्न श्रीयुत एच.एच. विल्सन ने किया है। इन्होंने सं. 1888 में तुलसीदास जी की जो संक्षिप्त जीवनी लिखी है, उसमें इन्होंने तुलसीदास जी के गुरु का नाम जगन्नाथदास लिखा है, जो भक्त माल के रचयिता नाभादास जी के शिष्य थे। इसमें विचारणीय यह है कि यदि तुलसीदास जी नाभादास जी के शिष्य जगन्नाथ जी के शिष्य होते तो फिर नाभादास जी स्वयं अपने शिष्य के भी शिष्य की भक्तमाल में इतने सम्मान पूर्ण शब्दों में इतनी प्रशंसा कभी न लिखते और फिर नाभा दास जी के शिष्य प्रिया–दास जी तुलसीदास जी को अपने गुरु भाई का शिष्य लिखने के गौरव से कभी अपने आपको वंचित न रखते। तात्पर्य यह है कि विल्सन साहब ने कहीं से सुन कर बिना विचार फिर जिन जगन्नाथदास को तुलसीदास जी का गुरु लिखा है, वह तुलसीदास जी के जीवन काल से भी 100 वर्ष पीछे की घटना सम्भव होने से उक्त मत सर्वधा उपेक्षणीय ही है। प्रियादास जी का ही समय संवत् 1766 वि. सिद्ध है, जो उन्होंने स्वयं टीका रचना में दिया है और तुलसीदास जी की मृत्यु संवत् 1680 वि. मे हो चुकी थी।

इसके पश्चात तुलसी–साहित्य के सुप्रसिद्ध यशस्वी अन्वेषक डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदास जी के 'बन्दों गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि' (रामचरित मानस बा.का.) वाक्य को लेकर तुलसीदास जी के गुरु के विषय में अनुसन्धान किया और उनको रामानन्द स्वामी की परम्परा में मान कर उनकी गुरु–परम्परा की दो सूचियां दी हैं। इन दोनों में तुलसीदास जी श्री रामानंद जी की परम्परा में आठवें ठहरते हैं। अन्तर केवल इतना है कि दूसरी सूची में श्री रामानंद

की परम्परा में छठवें गुरु का नाम श्री गरीबानंद जी के स्थान मै श्री गरीवदास जी दिया है। उक्त परम्परा का क्रम यह है –

1. श्री रामानंद	2. सुरसुरानंद
3. माधवानन्द	4. गरीबदास
5. लक्ष्मीदास	6. गोपालदास
7. नरहरिदास	8. तुलसीदास

इस सूची को प्रमाण मानने में सब से बड़ी आपत्ति तो यह है कि नाभादास की भक्तमाल ही इसका समर्थन कहीं नहीं करती, जो रामानंद जी की शिष्य परम्परा में स्वयमेव ही विद्यमान थे। वे रामानंद जी की परम्परा में सुरसुरानंद जी का उल्लेख करते हैं, पर अन्य शेष महात्माओं के विषय में उनकी परम्परा का कोई संबंध नहीं बतलाते। जब वे सुरसुरानंद की परम्परा के अप्रसिद्ध शिष्य केशव लटेरा तक का उल्लेख करते हैं, तब भक्तमाल के सुमेरु तुलसीदास जी का उस परंपरा में उल्लेख न करते, यह नहीं माना जा सकता।

नाभादास के भक्तमाल से लेकर प्रियादास की टीका और श्री गोकुलनाथ की दो सौ वैष्णवों की वार्ता आदि तक किसी ने भी उनके रामानंद सम्प्रदाय में दीक्षित होने और उनके रामानंदी बनने का उल्लेख नहीं किया। तुलसीदास के किसी शिष्य के उत्तराधिकारी के रामानंदी होने अथवा किसी रामानंदी के उनके किसी शिष्य की परम्परा मे उत्तराधिकारी महन्त बन जाने से भी तुलसीदास जी उक्त सम्प्रदाय के सिद्ध नहीं किए जा सकते।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने डॉ. ग्रियर्सन की खोज के आधार पर नरहरिदास जी को तुलसीदास जी का गुरु लिखा है। हिन्दी नवरत्न में श्री मिश्र बन्धु लिखते हैं –

गोस्वामी जी घर से निकल श्री स्वामी रामानंद जी महाराज के शिष्य सम्प्रदाय वाले महात्मा नरहरिदास जी के पास गये और उनके मन्त्र–शिष्य हो गये। जान पड़ता है, वैराग्य गृहण करने से पूर्व गोस्वामी जी नरहरिदास जी से विद्या भी पढ़ते थे और उसी समय आपने उनसे कथा भी सुनी थी। पीछे से वैरागी होने पर गोस्वामी जी ने उन्हीं को अपना दीक्षा गुरु भी कर लिया। (हिंदी–नवरत्न गोस्वामी तुलसीदास पृ.4)

'बाबू श्यामसुन्दरदास और डॉ. पीताम्बर बड़वाल ने नरहरिदास जी के स्थान पर नर हरयानंद जी को तुलसीदास जी का गुरु, माना है। वे लिखते है –

प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ डॉ. भंडारकर के अनुसार रामानंद जी का समय संवत् 1356 से 1467 तक है। अगस्त्य संहिता में जो रामानंदियों का बहुत मान्य ग्रन्थ है, यही समय दिया हुआ है। अनुमान से 1450 के लगभग उनके द्वादश शिष्यों का होना मान्य है। तुलसीदास आठ वर्ष की अवस्था में, सं. 1461 में, व्रत वंधन और राम नाम में दीक्षित हुए थे। 1450 और 1561 के बीच न तो दो पीढ़ियां ठीक ठहरती है और न आठ। हाँ, इन लगभग सवा सौ वर्षों में चार पीढ़ियों का समय खप जाता है। अतएव नर रूप हरि में गुरु के नाम का जो संकेत है, उस से अनंतानंद के शिष्य नरहरयानंद को समझना चाहिए।

(गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 38,36)

इन विद्वानों ने बाबा वेनी माधवदास के कथन को मान कर उक्त विचार किया है। पहले तो रामानंद जी के समय में ही 1356 और 1467 के दो भिन्न काल दिए गए है। इससे उन्होंने जो समय दिया है वह लगभग विशेषण लगा कर ठीक ठहरता है। यह निर्णय दिया है, वह निश्चित नहीं, अनुमान–मात्र है। अतएव प्रमाण–कोटि में नहीं लिया जा सकता। उन्होंने रामानंदी सिद्ध

करने हेतु उन्हें सुर सुरानंद जी की परम्परा के विरुद्ध उन्हें अनंतानंद जी की परम्परा के नरहरयानंद का शिष्य मान लिया है ।

काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में बनी कार्ययोजना से 'लिखे गए तुलसी ग्रन्थावली के तीसरे खंड की प्रस्तावना में श्री रामचन्द्र शुक्ल लिखते है –

"नर रूप हरि" से लोगों ने निकाला है कि नरहरिदास उनके गुरु थे। नरहरिदास रामानंद जी के बारह शिष्यों में से थे। स्वामी रामानंद जी का समय संवत् 1450 के लगभग माना जाता है। इस विधान से नरहरिदास की, जो ग्रियर्सन साहब की सूची में हैं, का सोलहवीं शताब्दी मे होना सम्भव है पर यह सब अनुमान केवल 'नरहरि' शब्द पर है, जो रामायण के आदि में आया है। तुलसी चरित में इसके सम्वन्ध में लिखा है कि गोस्वामी जी के गुरु रामदास जी थे, अनुमान की अपेक्षा इस स्पष्ट कथन को मानना उचित जान पड़ता है।

(तुलसी ग्रन्थावली पृ. 2630)

यह वही तुलसी–चरित है जिसे अलवर से बा. इन्द्रदेव नारायण ने प्राप्त किया था और जो एक मुंशी जी को भूटान के एक ब्राह्मण के घर उसके बच्चे को पढ़ाने की वृत्ति के काल में प्राप्त हुआ था। वहां गोसाई तुलसीदास के प्रिय शिष्य रघुवर दास का उक्त तुलसी चरित्र जो एक प्रेत को सौंपा गया था, मुंशी जी को मिल गया। इन्द्र देव जी के हाथों से फिर एक बार कुछ अंश निकलने के बाद पुनः उसी प्रेत के पास पहुंच गया कहा जाता है। इस ग्रन्थ के स्पष्ट कथन को मानने का आग्रह करते हुए शुक्ल जी ने जो कहा है और किन्हीं रामदास की तुलसीदास का गुरु लिखा है, वह सर्वथा अविश्वनीय मत होने से त्याज्य है।

इन्होंने पुनः हिन्दी साहित्य के इतिहास में बा. श्याम सुन्दर दास और डॉ. पीताम्बर दत्त बड़वाल के माननीय वैनीमाधव दास के नरहरयानंद के विषय ये कटाक्ष करते हुए (हिन्दी साहित्य का इतिहास) में लिखा है –

'रामानंद जी की शिष्य परम्परा के अनुसार देखे तो भी तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरयानंद और नरहरयानंद के गुरु का नाम अनंतानंद (प्रिय शिष्य अनंतानंद हते, मूल गो. चरित) असंगत ठहरता है। अनंतानंद और नरहरयानंद दोनों रामानंद जी के बारह शिष्यों मे थे। नरहरिदास को अलबत्ता कुछ लोग अनंतानंद का शिष्य कहते हैं, पर भक्तमाल के अनुसार वे अनंतानंद के शिष्य श्री रंग के शिष्य थे. (हि. सा. 80 पृ. 151)

पंडित रामबन्द्र शुक्ल न तो दूसरे मत स्थापन में निश्चित निर्णय पर आते हैं और न प्रथम मत को त्यागने के बारे में कारण देते है। हां, रामानंद –परम्परा के झमेले में किसी प्रामाणिक निर्णय पर न पहुंच सकने के कारण आप पुनः जहां सूरदास तुलसीदास मिलन के प्रसंग पर विचार करते हैं लिखते है –

'एक बात की ओर और ध्यान जाता है। तुलसीदास जी रामानंद सम्प्रदाय की वैरागी परम्परा में नहीं जान पड़ते। उक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती है, उनमें तुलसीदास जी का नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरा में सम्मिलित करने के लिए उन्हें नरहरिदास का शिष्य बताया जाकर परंपरा मिलाई गई है। वे रामोपासक अवश्य थे पर स्मार्त वैष्णव थे।' (हिन्दी सा. इ. पृष्ठ 159)

इस प्रकार शुक्ल जी तीन मत स्थापित करते है जो जिसे मानना हो मान ले। इधर नाभादास जी ने राम जी से तुलसीदास जी के समय तक नरहरि नाम के अनेक साधुओं का उल्लेख

आपने भक्तमाल में (छप्पय सं.37 रामानंद के शिष्य नरहरि दास, छप्पय स.38 अनन्तानंद की परम्परा में श्री रंग के शिष्य श्री नरहरिदास, छप्पय 67 नरहर्यानंद, छप्पय 100 नरहयनंद, छप्पय 152 अग्रदास के शिष्य नरसिंह, 30, 181, छप्पय 181 नरसिंहारण्य) किया है, जिनमें तीन को नाभादास जी ने रामानंद की परंपरा में स्पष्ट ही लिख दिया है।

रामानंदी सम्प्रदाय की परम्परा में तुलसीदास के रामवरित मानस का विशेष महत्व माना जाता है, जिसमे केवल रामोपासना प्रधान है और अन्य देव 'केहि लेखे' की भावना रखी जाती है। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने किसी भी ग्रन्थ में कहीं कोई शब्द स्वामी रामानंद जी अथवा रामानुजाचार्य की की स्तुति मैं कहीं नहीं कहा। इसमें सम्प्रदायानुयायी जैसी कट्टरता का सर्वथा अभाव ही है और उनकी रचनाओं में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की प्रधानता कहीं भी नहीं होने से उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित और उसी के संकुचित दायरे में चलने वाले सिद्ध करने की चेष्टा में नरहरि को ढूढ़ने रामानंद की परम्परा को खोजने तथा उसे नवीन रूप देकर किसी प्रकार तुलसीदास को रामानंदी सिद्ध करना व्यर्थ ही है। तुलसीदास यथार्थ मैं 'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपणम्' कह कर दास्य भक्ति के विमल आदर्श और आचार्य श्री मारुति के शिष्य होने की घोषणा करते हैं और यही उनकी रचनाओं में ओत प्रोत है। अध्यात्म के हेतु तो वे दास्य—भक्ति के आदर्श आचार्य मारुति जो रुद्रावतार हैं, को गुरु मान कर चले है, और उन्हीं के द्‌वारा राम तक पहुंचे है जिनको स्वयं परमात्मा श्री राम ने भक्ति—पंथ बतलाया था और जिसके विषय में स्वयं तुलसीदास जी लिखते हैं —

सो अनन्य जाकै मति, अस न टरे हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप रासि भगवन्त।।
(राम च. मा०)

जड़ चेतन मय नाम रूपात्मक सम्पूर्ण संसार की अपने सर्व व्यापी श्री राम का सगुण रूप समझ चराचर की सेवा करके जो राम की अर्चना करता है, वही परमात्मा राम का अनन्य सेवक है। इसमें जड़—चेतन मय सम्पूर्ण संसार की सेवा में ही राम की यथार्थ अनन्य भक्ति वा सर्व व्यापी निराकार परमात्मदेव भाव से प्रेय मौर श्रेय के भाव योग में विश्व—सेवा में विश्व—पति की उपासना का जो भाव है, वह स्पष्ट करता है, कि गोस्वामी जी वेदानुयायी थे और गीतोक्त कर्म योग में अद्वैत परमात्म भाव की प्राप्ति के हेतु लोक—कल्याण के लिए सत्कार्य सेवा—भाव से करना उनका संदेश है। इसमें रामानंदी सम्प्रदाय का मानना कठिन हो जाता है। राम चरित मानस तो गीता के समान सभी वैदिक संप्रदायों का उद्‌गम और समन्वय का आगार है। उसमें अद्वैत, विशिष्टा अद्वैत, द्वैत आदि सभी के अनुकूल सामान्य सिद्धान्त भरे पड़े हैं। परन्तु तुलसीदास जी का अपना व्यापक दृष्टिकोण था। वे वेदों के व्याख्याता ब्राह्मण और उपनिषदों के सिवाय स्मृति और पुराण आदि सभी को समान भाव से आदर देते हैं। उनकी रचना में गणेश, देवी, सूर्य, महेश और विष्णु की स्तुतियाँ, मंगलाचरण ही में धार्मिक विश्वास या स्वमत के अनुकूल वंदना लिखी पाई जाती है। इन से यह स्पष्ट है कि तुलसी दास किसी ग्रहस्थ स्मार्त ब्राह्मण नरहरिदास के शिष्य हुए थे जिसने बालकपन में ही उनका सूकर क्षेत्र (खेत) में पालन किया था और विद्याध्ययन करा कर उन्हें राम चरित्र का मर्म समझाया था। गुरु के यहाँ शिक्षा के बाद ही उनका विवाह हुआ था। यह हम उनके आत्म—चरित में देख ही चुके हैं।

रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज ने तुलसी ग्रन्थावली खंड ३ में तुलसी दास पर गवेषणापूर्ण निबंध लिखा है, उसमें उन्होंने उनके गुरु के संबंध में लिखा है – 'लड़कपन में तुलसीदास अपने गुरु के पास सूकर क्षेत्र (खेत) में (आज कल सोरों कहा जाता है) रहते थे और रामायण की कथा सुनते थे । वह आप ही कहते है –

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी
कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहि तसि बालपन
तब अति रहेऊ अचेत ।।

श्रोता वक्ता ज्ञान निधि
कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझै यह जीव जड़
कलि मल ग्रसित विमूढ़ ।।
तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा।।

धन्य गुरु जी, आपने 'बारहि बारा' कहते हुए अच्छी रीति से पढ़ाया। अच्छी रीति से पढ़ा। कहा जाता है कि गुरु का नाम नरहरिदास था

तुलसी ग्रंथ तीसरा खंड पृष्ठ 45–46

सौजन्य : हरिविष्णु अवस्थी, अध्यक्ष श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद, किले का मैदान टीकमगढ़

श्रद्धांजलि

श्री हरिविष्णु अवस्थी

15 फरवरी 1933 को जन्मे श्री हरिविष्णु अवस्थी जी ने लगभग 93 वर्ष की पूर्णता पर विगत 11 सितंबर 2025 को रामराजा सरकार की नित्य लीला भूमि में प्रवेश किया। सही अर्थों में देहदान कर अपनी देह विसर्जित करने वाले अवस्थी जी श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् के अध्यक्ष थे। उन्होंने स्मृति शेष अपनी पत्नी रमा अवस्थी के नाम से एक दशक पूर्व तुलसी मानस भारती की वर्ष की श्रेष्ठ महिला लेखिका हेतु "रमा अवस्थी सम्मान" संस्थापित किया।

वे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, इतिहास–पुरातत्व विद्, वरिष्ठ कवि और समृद्ध लेखक के साथ बुंदेली माटी के परमोपासक थे। उनके सौजन्य से मानस भवन को ओरछेश महाराज वीरसिंह जू देव द्वारा लोकनाथ द्विवेदी सिलहकारी द्वारा वर्ष 1945 में सम्पन्न तुलसी विषयक 400 पृष्ठ की दुर्लभ शोध सामग्री उपलब्ध हुई ।

श्री अवस्थी जी दिव्यात्मा के रामराजा सरकार के सान्निध्यगत होने पर प्रतिष्ठान उनके प्रति प्रभूत श्रद्धावनत है ।

रघुनंदन शर्मा, कार्याध्यक्ष

डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

कृष्ण गीतावली

इसमें इकसठ (61) गीत संकलित है जिनमें मुख्यतः 5 प्रकरण कृष्ण विषयक है; अंतिम दो गीत द्रोपदी के चीर हरण से सम्बंधित हैं। प्रारम्भ में श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था के क्रिया–कलाप और गोपियों की शिकायतें, उलाहना और उनके आन्तरिक प्रेम की भावनाएं अंकित हैं। शेष गीत उद्धव के ज्ञानोपदेश, गोपियों के आक्रोश, व्यंग्य और निर्गुण की अवहेलना के साथ उनके कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण की भावनाएं हैं। यह ग्रंथ श्रीकृष्ण के समग्र जीवन का काव्य नहीं है। शीर्षक पढ़ने से यह भ्रम होता है कि यह कृष्ण सम्बंधी वैसी ही कृति होगी जैसी उनकी राम सम्बंधी अन्य कृतियाँ हैं।

इस संग्रह की विशेषता है कि गीतों को राग रागिनियों से जोड़ा गया है। राग बिलावल, राग ललित, राग आसावरी, राग झौरी, राग केदार, राग मल्हार, राग नट, राग कान्हरा, राग धनाश्री, राग सोरठा का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि तुलसीदास को राग रागिनियों का अच्छा ज्ञान था। यह भी सम्भव है कि वे संगीत तथा गायन में भी दक्ष रहे हों क्योंकि इसके बिना इन रागों का निर्वाह और प्रयोग सम्भव नहीं है। रागों के अनुसार ही गीतों की रचना की गई होगी। आधिकारिक रूप से कुछ कह पाना सम्भव नहीं है।

कृति के पहले पद में माता के वात्सल्य और प्यार–दुलार तथा कृष्ण के बाल हाव–भाव के उल्लेख के साथ माँ का आग्रह है कि आपका स्वरूप तो दिव्य है किन्तु मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारा सामान्य रूप देखूँ। आपकी बाल–क्रीड़ायें तो सभी को आनन्दित करने वाली हैं। उल्लेखित गीत भाव–दृष्टि से अन्य गीतों से सर्वथा अलग हैं अतः आकार में बड़ा होकर भी उसे उद्घृत किया जाना, सार्थक होगा। राग बिलावल में प्रस्तुत गीत इस प्रकार है –

'माता' लै उतंग, गोविंद-मुख बार-बार निरखै।
पुलकित तन आनंद घन, छन-छन मन हरषै ।।१।।
पूछत तुतरात बात, मातहि जदुराई।

अतिसय जों ताहि मोहि कछु समुझाई।।२।।
'तुलसी' प्रभु प्रेम-बस, मनुज रूप धारी।
बाल-केलि लीला-रस, ब्रज जन हितकारी।।७।।

माता यशोदा आनन्दघन, गोविन्द को गोद में लेकर मुख देखकर पुलकित हो रही हैं। तोतली बोली में श्रीकृष्ण कुछ कह रहे हैं जिसे यशोदा समझ नहीं पा रहीं। माँ यशोदा कहती हैं, अपनी बात समझाकर कहा। तुम्हारे स्वरूप–सौंदर्य का वर्णन करना सम्भव नहीं। तुम अतीव सुन्दर हो और मैं अत्यन्त भाग्यवान (पुण्यात्मा)। तुलसीदास कहते हैं कि भगवान कृष्ण मानव रूप में बालकोचित क्रिया–कलाप से सबको आनन्दित कर रहे हैं।

राग ललित में रचित दूसरा पद तुलसीदास की मौलिकता का परिचायक है। कृष्ण माता से आग्रह करके चिकनी चुपरी मोटी मीसी छोटी रोटी मांगते हैं। इस गीत में कृष्ण के बालोचित आग्रह और सौंदर्य का भी चित्रण है –

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै।
'दे दे री मैया' 'ले कन्हैया' सो कब अबहिं तात।।
सिंगरिये हौं ही खौं ही, बलदाऊ कोन दें हौं,
सोक्यों भटू तेरो कहा; कहि रत उत जात।।
बोलि बोलि उहकि बिरावत,
चारित लखि-गोपीजन,
महरि मुदित पुलकित गात।।
नूपुर की धुनि किंकिन कलरव सुनि,
कूदि-कूदि किलकि-किलकि गढ़े-गढ़े खात।।
तनिया ललित कटि, विचित्र टेपारी सीस,
मुनिन्मन खत बचन कहै तुतरात।।
'तुलसी' निरखि हरषत बरषत फूल,
भूरि भागी व्रजवासी, बिबुधसिद्ध सिहात।।

उसके बाद के अनेक गीतों में कृष्ण के नटखट कृत्यों और दही–माखन खाने–चुराने–बगराने की शिकायतें और उलाहना कई गोपियाँ यशोदा को देती हैं। एक गोपी आवाज देती है –

गोरस-हानि सहौं, न कहौं कछु,
एहि ब्रज बास बसेरो।
दिन प्रति भाजन कौन बेसा है
घर निधि काहू के रे।

कृष्ण गोपियों की शिकायतों को झुठलाते हुए कहते हैं – 'ए गोपियाँ झूठी शिकायत करती हैं। उनकी तो आदत है दूसरों पर दोषारोपण की –

मो कहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
इनके लिए खेलिबो छाँड़्यो
तऊन उबरन पावहिं।
करहिं आप सिर धरहिं आन के,
बचन बिरंचि हरावहिं।

मैं तो कभी किसी के घर जाता नहीं। अपने घर में ही खेलता रहता हूँ –

कबहूँ न जात पराये धामहिं।
खेलत ही देखौ निज आँगन,
सदा सहित बलरामहिं।

इस प्रकार के तमाम उलाहने यशोदा को देकर गोपियाँ कृष्ण की नाना प्रकार की शिकायतें करती हैं और कृष्ण अपने भोलेपन पर सफाई देते हैं। यशोदा कृष्ण को समझाती हैं, डांटती हैं। छड़ी से दंडित भी करती हैं। कृष्ण दंड के भय से डरने और रोने का अभिनय करते हैं। तुलसीदास ने इसका स्वाभाविक चित्रण किया है। यशोदा कृष्ण को समझाते हुए कहती हैं – मेरे प्यारे बेटे। यह लड़कपन छोड़ो। अब तुम बड़े हो गये हो। तुम्हारे विवाह के लिए देखने वाले आने वाले हैं –

छोड़ो मेरे लाल ललित लरकाई।
ऐहैं सुत! देखुवार कालि तेरे,
मनै ब्याह की बात चलाई।
डरिहै सास-ससुर चोरी सुनि,
हँसिहैं नई दुलहिया सहाई।

गोपियों के उलाहनों से परेशान यशोदा ने कृष्ण को समझाया, डांटा। यहाँ तक कि सजा देने के लिए रस्सी से बाँध दिया। छड़ी उठाकर

पीटने लगी। फलतः कृष्ण भयभीत होकर, दुबक कर रोने–सिसकने लगे। कृष्ण की ऐसी दयनीय दशा और यशोदा का गुस्सा देखकर गोपियाँ तथा अन्य महिलाएँ यशोदा को ऐसा न करने के लिए कहती हैं।

मंजु अंजन सहित जलकन,
चुवत लोचन चारु।
लेत भरि-भरि नीर कान्ह कमल नैन।
फरक अधर उर, निरख लकुटकर,
कहि न सकत कछु बैन।
दुसह दाँवरी छोरि खोरि कहा कीन्हों,
चीन्हों सुभाय तेरो आज लगे माई! मैन।
'तुलसीदास' नंदलाल ललित लखि,
सिर क्यों रहति उर ऐन।

तुलसीदास ने यशोदा के आक्रोश और भयभीत कृष्ण की दयनीय स्थिति और द्रवित गोपियों तथा गुरू पत्नी की मनोदशा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। गुरु पत्नी कहती हैं–मैंने आज तक तुम्हारा ऐसा स्वभाव नहीं देखा। तुम्हारे यहाँ गायों के दही–माखन की कोई कमी नहीं है। बच्चे ने खाया, खिलाया, बिगाड़ा, बगराया, ऐसा तो बच्चे करते ही हैं। ऐसे प्यारे बालक पर क्रोध करना ठीक नहीं। तुम्हारा कैसा निठुर ह्रदय है –

दूध-दधि-माखन गोपालन गोधन धन,
जब ते जनम हल धर हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगारयो-खरयो,
लरिकारी, ऐसे सुत पर कोह,
कैसो तेरो हियो है?
ललित लालन निहारि महरि, मन विचारि,
डारि दे घरवसी लकुटि बैगि कर तें।
कछु कहि न सकति, सुसकत, सकुचत,
डर हूँ को डर कान्ह डरै तेरे डर तें।

कृष्ण के ऐसे बाल–चरित लीलाओं का तुलसी दास ने प्रभावी मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। एक पद में बृज पर इन्द्र के कोप और कृष्ण के गोवर्धन पर्वत उठाने का उल्लेख है। कुछ गीतों में कृष्ण की बाल–छवि, मथुरा–गमन, गोपियों की बिरह–व्यथा का चित्रण है। गोपियाँ कभी–कभी कृष्ण को दोष देती हैं, कभी स्वतः की प्रेम–भावना को दोषी मानती हैं। वे सोचती हैं –

इसका आशय यह कतई नहीं है कि तुलसी दास की रचना अनुकरण मात्र है। तुलसी दास बहुपठित विद्वान, भक्ति और आध्यात्म में पारंगत ज्ञानी थे। उनकी शब्द–योजना साहित्यिक और संस्कृत गर्भित हैं। उन पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव अस्वाभाविक नहीं है। यह उद्धव–प्रसंग वहीं से उठा है। संतों ने पूर्ण ब्रह्म के किसी रूप में भेंट नहीं किया। यदि सूरदास ने राम सम्बंधी पद लिखे तो तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली की रचना की। परवर्ती विद्वानों की अपनी कल्पनाएं कुछ भी हो सकती हैं।

कृष्ण गीतावली की गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ज्ञानोपदेश को नकारते हुए भ्रमर के माध्यम से अपनी भावनाएँ व्यक्त करती हैं। उनमें व्यंग्य भी है, कृष्ण के सानिध्य का उल्लेख और कूबरी के प्रति कटाक्ष भी है। वे कहती हैं –

ऊधो ब्रज की दसा विचारो।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी
लोग कथा विस्तारो।
जेहि उर बसहु श्याम-सुन्दर-घन,
तेहि निरगुन कस आवैं।
'तुलसीदास' सो भजन बहाओ,
जाहि दूसरो भावै।
सो कहौं मधुप जो मोहन कहि पठई।
तुम सकुचत कउत्त हौ ही नीके जान कि,
नंद दिन हो निपट बसे सठई।
हुता न सांचो सनेह, मिट्यो मन को संदेह,
हरि परे उधार, संदेसहु सठई।
तुलसीदास कौन आस मिलन की,

कहि गए सो तों कुछ एकौ न चित हई।

गोपियाँ कूबरी को लेकर तमाम व्यंग्यात्मक शब्दों में भला–बुरा कहती हैं। उन्हें विश्वास है कि यह सब कृष्ण ने न कहा होगा। कूबरी ने ही यह पाठ पढ़ाया होगा –

मधुकर! बात कही ते न दोहीं।
कै ये नई सिखी सिखाई हरि,
निज अनुरोध बिछो हीं।
सखी सचि कूबरी-पीठ पर,
ये बातें बकुचौ हों।
श्याम-सो गाहक पाइस पानी,
खोति देखाई हैं गौ ही।
मधुप! तुम कान्ह की ही कही क्यों न कही है?
कब ब्रज तज्यो? ज्ञान कब उपज्यो?
कब बिछेह तब कही है?
गए निसारि रीति गोकूल की,
अब निर्गुन गति लहीं है।
यह बतकही चपल चेरी की,
निपट चरेराये रही है।

गोपी की कटु बातें सुनकर दूसरी गोपी समझाती है। सखी बुरा–भला इन्हें मत कहो। ये तो अपने प्रेमी श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं –

आली! अति अनुचित उत्तर न दीजै।
सेवक सखा सनेही हरि के,
जो कछु कहैं सो कीजै।

क्योंकि उद्धव बड़े हैं, सयाने हैं –

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोव कीजै।

अब ऐसा प्रयास करें कि कूबरी को ही मनाकर ब्रज में लाना चाहिए। उसके साथ कृष्ण स्वयं आ जाएंगे –

सब मिलि साहस कहिरये सखानी।
ब्रज जानियहिं मनाउं पाँय परि,
कान्ह कूबरी रानी।

गोपियाँ उद्धव से स्पष्ट कह रही हैं कि बिना कृष्ण के हमारी वियोग–व्यथा दूर नहीं हो सकती। अब इस जीवन में कृष्ण की सिवाय किसी के लिए स्थान नहीं है। तुम्हारे योग का प्रयास निरर्थक है –

श्रीपद सुनहु कर वचन हमारे।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयन को कौन हरै,
हरि अंतर कारे।
कनक कुंज भरि-भरि पियूष जल,
बरसत सब कलसहु हारे।
कदलि, सीप-चातक को काजे,
स्वाति-वारि-बिनु काउन सवारे।
सब अंग रुचिर किसोर स्याम मन जेहि,
रुदिलाज बन हरि प्यारे।
क्यों समान तेहि उर बिराट बसु
ज्यों नहीं सरि सिंध गिरि भारे।
बह्यो भरि प्रेम-प्रलय के कट
ज्यों बिकुली जोग जल बोरि न पारे।
तुलसीदास ब्रज-बनितन कोखर समध,
को हरि जतन निवारों।

ब्रज की गोपियाँ उद्धव को सलाह देती हैं –

उधव! समुझि देख सुमरत नाहीं।
प्रेम पियूष रूप उड़ति बिनु,
कैसे अलि! पैयत रवि-पाहीं।
तुलसीदास सोहू जान करहु बहु,
बारक ध्यान इहां पिरि नाहीं।

कृष्ण गीतावली के अंतिम दो गीत द्रोपदी से सम्बंधित हैं। लगता है किसी कवि ने इसे बाद में जोड़ दिया है।

ए–7, फार्चून पार्क, गुलमोहर कॉलोनी, भोपाल
मो. 9423376413

कविता

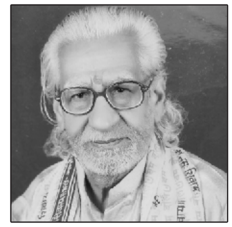

पं. गिरि मोहन गुरु

दीप गीत

अंधकार पर विजय ज्योति की
शुभ बेला आई है.....

नभ की करने होड़
धरा ने ली अंगड़ाई है,
इसीलिए हमने दीपावली मनाई है।

आज अवध के आंगन सा हर आंगन आलोकित है।
राम राज्य की पुनः प्रतिष्ठा में पल-पल पुलकित है।
द्वार द्वार पर दीप दीप ने की अगुवाई है....।

अंधकार पर विजय ज्योति की अनाचार पर नय की
हृदय हृदय पर अंकित गौरव गाथा राजा राम विजय की।
फुलझड़ियों की लड़ी पटाखे की बन आई है....।
अंधकार पर विजय ज्योति की शुभ वेला आई है।

शिव संकल्प साहित्य परिषद् नर्मदापुरम्
मो. 9425189042

रंजना शर्मा

शरणागति और प्रेम

प्रह्लाद को न तो राज्य की परवाह थी न प्राणों की। उन्हें भिन्न–भिन्न कष्ट भी दिए गए–बारंबार पीटे गए, पर्वत शिखर से गिराये गए, साँपों से डंसाया गये, हाथियों से खुंदवाये गये, अग्नि में गिराये गये तो भी उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी। आखिर प्रभु प्रगट हुए,आये ही नहीं क्षमा भी मांगी, 'बोले वत्स मुझे आने में विलंब हुआ'।

साधुवेश धारी भगवान अपने सिंह के लिए मयूरध्वज से उसका शरीर मांगते हैं और वह भी बड़े हर्ष से तैयार हो जाते हैं। कहते हैं,मेरा सौभाग्य है कि मैं वाघ का भोजन बनूंगा। यह तो स्वयं नारायण का रूप है। राजा अपने कुमार द्वारा आरे से चिरवाने को अग्रसर हुए, उनकी आस्था थी कि यदि सिंह का भोजन बनूंगा तो प्रभु प्रसन्न होंगे। ये तो छद्म वेशधारी प्रभु थे यदि स्वयं सच्चे रूप में आते, तो ना जाने भक्त क्या करते।

नामदेव जी भोजन करने बैठे और कुत्ता रोटी लेकर भागा और नामदेव जी उसके पीछे घी लेकर दौड़े, भगवन!रोटी सूखी है इसे चुपड़ देने दीजिए और इस प्रकार की भगन्निष्ठा भगवान को वलात् अपना ऋणी बना लेती है।

भगवत्प्राप्ति के लिए त्याग आवश्यक है। ह्रदय से समझिए कि जो कुछ भी हमारे पास है वह सब प्रभु का ही है।एक दानी व्यक्ति के दान की प्रशंसा की गई, तो वह रोने लगा।उससे रोने का कारण पूछा गया तो बोला,'धन उसका है, देने वाला वह है मैं तो निमित्त मात्र हूँ। लोग मुझे दानी कह रहे हैं, भला मैं प्रभु को क्या मुँह दिखाऊंगा? यदि हमारी सभी चेष्टाऐं प्रभु के निमित्त होंगी, हम तन, मन, धन सबकी सार्थकता प्रभु की प्रसन्नता में ही समझेंगे तो निश्चित ही उनको विवश होकर हमारे पास आना ही होगा।

सी–24, सिद्धार्थ लेक सिटी, भोपाल 462022

पुस्तकायन

प्राचार्य डॉ. विश्वास पाटील

रामायण की संस्कृति और गो. तुलसीदास जी का संदर्भ

रामायण मन का संस्कार करने वाला अद्‌भुत रसायन है। पहले सहस्रक में वाल्मीकि जी, दूसरे सहस्रक में कालिदास जी और तीसरे सहस्रक में तुलसीदास जी ने राम चरित मानस की रचना कर भारतीय मानस को अभिषिक्त किया। यह न केवल कालगत विविध सरणियों को छूने वाली साहित्यिक संहिता है अपितु मनुष्य के जीने, जूझने और समर्पित होने की दिशादर्शक कहानी है। मानव के अंतःसंघर्ष का व्यूह है। रामायण के माध्यम से मनुष्य का जीवन कैसा होता है इसका पता लगता है तो महाभारत परिचय करा देता है कि जीवन किस प्रकार का होता है। यों दोनों के अध्ययन से जीवन का एक चक्र पूर्ण हो जाता है। दोनों के मध्य में सिंहासन है। एक में सिंहासन छोडने वाला भाई है तो दूसरे में सिंहासन के लिए प्राणों की प्यास पालने वाला भाई है। सिंहासन यों दोनों महाकाव्यों के मध्य में केंद्र में है। दोनों कहानियाँ मनुष्य के मन की सतह से तह तक उतर गई हैं और दोनों के माध्यम से मनुष्य के मन में जगे हुए नवजागरण के संकेतों का प्रमाण मिलता है।

तुलसी जी ने जिस राम और रामायण की सर्जना की है, उसकी संरचना की सोद्देश्यता का विचार प्रमुख है और पद्धति गौण है। पंडित विद्यानिवास मिश्र जी ने अपनी मधुर शैली में तुलसी जी के बारे में कहा है ''वे पहाड़ी झरने की तरह पारदर्शी हैं पर उनकी गहराई का अंदाज ही नहीं लगता। सब कुछ साफ–साफ दिखता है, पर साहस नहीं होता कि डुबकी लगा कर गहराई में पड़े एक भी मणि–माणिक हाथ में उठा लाएँ। एक तो गहराई, दूसरे तेज, तीसरे अपनी अक्षमता का बोध यह सब मिल कर तुलसीदास जी को ठीक तरह से समझने नहीं देता।' 1

राम में बहुत अपनत्व मिलता है। सूर के कृष्ण नाते तोड़ते हैं जबकि तुलसी के राम नाते जोड़ते हैं। राम नेह और नाते निभाने का दूसरा नाम है। हर प्रकार के नाते और हर तरह के रिश्ते। तुलसी के मर्म को समझना आसान नहीं है। प्रातःस्मरणीय गोस्वामी जी अपने आपको कामी और ढोंगियों की पंक्ति में स्थापित करते हैं। यह

बहुत ही आश्चर्यकारक सत्य है।

धीर धरम ध्वज धक धोरी।
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी।।

कहने के लिए जो निश्च्छलता तथा पारदर्शीपन जरूरी है वह तुलसीदास जी में कूट –कूट कर भरा हुआ है।

काह न कियो, कहाँ न गयो,
सीस काहि न नायो।

कह कर जो आत्मनिवेदन बाबा ने किया है वह विलक्षण है। तुलसी जी की दयनीयता को समझने के लिए उनकी निष्कपटता समझनी आवश्यक है। राम के अनन्य विश्वास के कारण ही यह दीनता आई है। अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि राजा राम को भजे बिना जन्मजन्मांतर तक दसों दिशाओं से दुःसह दुःख पाया है। राम में अनन्य विश्वास होने के बाद यह दीनता क्यों ? इसका उत्तर है कि यह तुलसी का बड़प्पन है। राम तो बिन सेवा से भी द्रवित होने वाले परम निधान है। तुलसी अनुभव करना चाहते हैं कि टूट कर ही अनुभव किया जा सकता है कि हम राम के हैं। खो कर अनुभव किया जा सकता है कि हमें जो पाना था, उसे हमने अभी तक खोजा ही नहीं था। तुलसी की तरह की विनम्रता एक बहुत बड़े मन की उदारता है। इस उदारता का रहस्य तुलसी को मिली हुई स्वीकृत संस्कृति है। उस संस्कृति ने तमाम राहों को राह माना लेकिन व्यक्ति को यह स्वतंत्रता प्रदान की कि वह इनमें से कोई राह चुन सकता है लेकिन जिसे चुने उसे पूरी निष्ठा से चुने। वरण की स्वतंत्रता का अनुभव लघु मन से नहीं हो सकता है। वह अनेक के वरण की स्वतंत्रता के बीच से गुजर कर ही हो सकता है। तुलसीदास जी ने प्रणाम तो अनेक देवी तथा देवताओं को किया है लेकिन सबसे एक ही वरदान और माँग की है कि राम में उनकी अनन्य भक्ति हो।

सकल सिद्धि कर साधन ऐहू,
मन क्रम बचन रामपद नेहू।

तुलसी के लिए सारे नेहों का नेह, सारे नातों का नाता राम से नेह ही है। राम से जुड़कर कोई भी नाता छोटा नहीं होता है। पंडित जी को आज के समय में, नेह और नातों के बीच इनकी परिधि में रह कर राम को देखने की कोशिश अधिक प्रासंगिक लगती है।

परंपरागत रूप में आलोचकों ने राम को मर्यादावादी कहा है। लोकमंगल का संस्थापक सिद्ध किया है। जनोद्धारक कहा है। समन्वयवादी कहा है लेकिन पंडित जी को तुलसी के ये रूप अधिक महत्वपूर्ण नहीं लगते हैं। लौकिक अर्थ में जो मर्यादाएँ स्वीकृत हैं वे सभी एक विराट मान्यता के सामने तुलसी के मूल्यबोध में टूटती ही रहती हैं। राम में एकाग्रता जागे तो जाति–पाति का, विचार–संप्रदाय का, 'धन– धरम' का सारा विचार अनावश्यक होता है। तुलसी के लिए वर्णाश्रम धर्म साध्य न हो कर अनेक साधनों में से मात्र एक साधन रह जाता है। राम के भाव से भावित लोकमंगल ही उनकी दृष्टि में मंगल है। राम के अभाव में घर भूतों का डेरा है, अपने ही परिजन यमदूत हैं, मित्र शत्रु हैं। मंगल का अधिष्ठान राम की उपस्थिति है। 'राम नाम मंगल दिसि दसहूँ' का अर्थ यह नहीं है कि राम का नाम लेने से दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा, उसका अर्थ यह है कि राम की उपस्थिति का विचार आते ही मन ऐसी संपूर्णता से भर जाता है कि सब राम के हो जाते हैं, सारी दिशाएँ राम की हो जाती हैं.

कोई पराया नहीं रहता, इतना ही नहीं लेकिन राम को बुरा–भला कहने वाला, राम से शत्रुत्व मोल लेने वाला भी राम के लिए पराया नहीं होता। राम की अनुपस्थिति सब कुछ को उजाड़ कर देती है। राम की अनुपस्थिति का बोध पाप का वास्तविक बोध है। यह बोध जितना सुमंत्र के लिए है उतना ही बालि के लिए भी है। लक्ष्मण तो धर्म और नीति के उपदेश के बदले मात्र राम को चाहते हैं। वे कीर्ति को नकारते हैं, अभ्युदय का विचार नहीं करते, सुगति की चिंता नहीं करते। उनके लिए बस राम ही राम सब कुछ हैं।

राम का अपनत्व एक विचित्र प्रकार के अपनत्व का अनुभव है। राम को अयोध्या से निष्कासित करने वाली माता कैकैयी स्वयं अपने पुत्र के लिए पराई हैं, भरत उसके प्रति पराकाष्ठा के निष्ठुर हो गए हैं लेकिन राम माता कैकेयी को अपनी सगी माता कौशल्या से अधिक मानते हैं। जहाँ सब कुछ राम पर ही छोड़ दिया जाता है वहाँ राम न केवल द्रवित होते हैं अपितु विवश तक हो जाया करते हैं। वे कौशल्या के सम्मुख विवश नहीं होते, सीता के आगे द्रवित होते हैं, विवश होते हैं। वे लक्ष्मण के आगे भी विवश हो जाते हैं क्योंकि इनका कोई आलंबन या आश्रय नहीं हैं। राम केवट के आगे विवश हो जाते हैं। उसके आगे गंगा पार उतरवा देने के लिए निहोरा करते हैं। राम रहते तो हैं वन में लेकिन सबके मन पर राज्य करते हैं। होते हैं निर्वासित लेकिन सबके जीवनाधार बनते हैं। भरत भवन में बैठे हैं, राजा होते हुए भी तपास्यारत हैं। भरत के साथ राम का सहज रिश्ता तुलसी काव्य के एक विशिष्ट उद्देश्य को रेखांकित करता है। राम ग्लानिग्रस्त भरत को महत्व देते हैं। राम उसी के होते हैं जो राम के प्रेम का भाजन बनने के लिए अपने आपको अपनेपन से बिल्कुल खाली कर देता हैं।

राम का समीप आना एक विराट अनुभव है। यह अनुभव संभालना सहज नहीं है। सहज हो जाने पर राम बिल्कुल समीप आ जाते हैं, सामने आ कर मिलते हैं। राम में समानता है, एकदृश्यता है। पंडित जी लिखते हैं –"राम के द्वारा अपनाए जाने की एक पहचान है कि गर्व टूटता रहे, निरादर से जलन न हो, प्रभु की चर्चा चलते ही 'नयनों में नीर ढरे', दूसरे की पीड़ा अपनी पीड़ा हो, क्योंकि राम का रिश्ता पीड़ा मात्र से है।" राम के रिश्ते की एक खूबी है कि वह निरंतर रिश्ता है। आज तो मनुष्य और मनुष्य के बीच का रिश्ता खोखला हो गया है। दोनों के बीच में उपचार के मुखोटै का दुर्भेद्य अंतराल आ गया है। इस सालती हुई अनुभूति में तुलसी का और उनके राम का स्मरण नितांत प्रासंगिक है।

राम के साथ जुडने और राम के द्वारा अपनाए जाने की एक पहचान है कि गर्व टूट–बिखर जाता है। राम का रिश्ता मात्र पीड़ा से होने के कारण जो दूसरों की पीड़ा को जानता है, दूसरों की पीड़ा को जो अपनी ही पीड़ा मानता है वह राम से जुड सकता है। गुजरात के संत कवि नरसी मेहता ने अपने सुप्रसिद्ध भजन में यही बात कही है 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीड़ पराई जाने रे' (परपीड़ा जानने वाला ही सच्चा वैष्णव है।) यह भजन गाँधी जी का बहुत प्रिय भजन रहा है। मराठी के संत तुकाराम जी का अभंग है

जे का रंजले गांजले।
त्यासी म्हणे जो आपुले।
तोचि साधु ओळखावा।
देव तेथेचि जाणावा।

(जो दीन वंचित शोषितों को अपना मानता है,

वही सच्चा साधु माना जाए, वहीं ईश्वर का निवास स्थान मानना चाहिए।) राम का रिश्ता एक निरंतर रिश्ता है। राम से संबंध होने का अर्थ उन सबसे संबंध होना है जो राम के हैं। इतना ही नहीं लेकिन यह रिश्ता राम से वंचित लोगों के प्रति भी है।

रामकथा असीम है और अतीत की कथा नहीं है क्योंकि वह रामकथा में शरीक व्यक्ति की कथा है। पंडित जी ने इस रहस्य पर से परदा उठाते हुए कहा है –"तुलसी की रामकथा का जो मुख्य रस है, वह न राम का है, न राम के उत्साह, शील, करुणा और प्यार का रस के रूप में रूपांतरण है, न सीता की राम के प्रति अनन्य रति का उदात्त श्रृंगार के रूप में रूपांतरण है, न लक्ष्मण–हनुमान जैसे सेवकों के दास्यभाव का एक उच्छल भक्ति रस के रूप में रूपांतरण है। कुछ दूर तक वह भी है परंतु पारमार्थिक रूप से वह रस शुद्ध रूप में रामभाव का रूपांतरण है। रामकथा के केंद्र में राम नहीं हैं, रामभाव है। रामभाव कहना भी अपर्याप्त होगा, उसे राम भाव का एक ऐसा रस–प्रभाव कहना चाहिए जिसमें आदमी जितनी बार डूबता है उतनी बार ही तिरता है – और डूबना तिरने से अच्छा लगता है।"

तुलसी के रामचरितमानस की बनावट के संबंध में पंडित जी ने समझाया है कि यह विचित्र संश्लेषण है। इन पंक्तियों के लेखक ने अपने स्नातकोत्तर विद्यार्थी काल में पुणे विश्वविद्यालय, (वर्तमान सावित्री बाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे) महाराष्ट्र में सन् 1973–74 में पंडित जी का व्याख्यान 'मानस की संरचना की सोद्देश्यता' विषय पर सुना है। उस समय अपने विवेचन में अनेक अस्पर्श मुद्दों को पंडित जी ने स्पर्श किया था। अपने लेख में पंडित जी लिखते हैं कि इसमें भागवत की तरह संवादों से संवाद गुँथे हुए हैं। कुछ अंश काव्य है तो कुछ अंश लीलायित होने के लिए हैं। मानस एक ऐसा प्रबंध काव्य है इसमें प्रतिनायक नहीं हैं। मानस में कवि आदि से अंत तक संबोधित करते हुए मिलते हैं। एक प्रकार से कवि की कथा के साथ सहयात्रा है। पंडित जी ने समझाया है –"रामचरितमानस का लक्ष्य सृष्टि का रहस्य समझना नहीं है, न ही नारायण की नरलीला का मर्म खोलना मात्र है। तुलसी का लक्ष्य अपने जमाने के भीतर के अंधकार को दूर करना है।"

राम की कथा की कोई सीमा नहीं है। वह असीम है। उसकी मिति जग में नहीं है। राम किसी विशिष्ट कल्प या काल में बँधे हुए नहीं हैं। वे कोटि–कोटि चरित्रों में प्रकाश की तरह निरंतर प्रवहमान है, निरंतर झर रहे हैं. राम की कथा अतीत की गाथा नहीं, अनुभव की थाती है. राम भाव के दो प्रतिमान हैं एक हैं शिव जी और दूसरे हैं भरत जी. शिव सिद्ध हैं तो भरत साधक. शिव भक्त हैं तो भरत राम के स्नेह के आकार हैं। तुलसीदास जी ने 'विमल विवेक' की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि जिसमें विवेक होगा वे राम कथा को समझ पाएँगें। पंडित जी ने इस विवेक के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा है –"इस विवेक के भी दो रूप है– एक है विवेक की सिद्धावस्था और दूसरी है साध्यावस्था। सिद्धावस्था शिव हैं और साध्यावस्था भरत हैं। बिना इन दोनों विवेक के प्रतिमानों के राम को नहीं समझा जा सकता है। इनके माध्यम से इनके पास बैठ कर, इनसे सीखकर राम को समझा जा सकता है।" तुलसी की यह रामकथा उनके भीतर उनकी अपनी कथा है। उनकी स्वानुभूति है, उनके अनुभव में पले राम की कथा है।

राम भाव का मनोरम शैली में उद्घाटन करते हुए पंडित जी लिखते हैं कि तुलसी की राम कथा का जो मुख्य रस है, न राम का है, न राम के उत्साह, शील, करुणा और प्यार का रस के रूप में रूपांतरण ही हैं, न सीता की राम के प्रति अनन्य रति का उदात्त शृंगार के रूप में रूपांतरण है, न लक्ष्मण–हनुमान जैसे सेवकों के दास्य भाव का एक उच्छल भक्ति रस के रूप में रूपांतरण है। कुछ हद तक हो सकता है लेकिन पारमार्थिक रूप से वह रस शुद्ध रूप में रामभाव का रूपांतरण है। रामकथा के केंद्र में राम नहीं, राम भाव है। दरअसल वह राम भाव कहना पर्याप्त नहीं होगा, उसे राम भाव एक रस–प्रभाव है। रामकथा का अंत नहीं है।

पंडित जी के मतानुसार तुलसी की रामकथा की रचना एक विचित्र संश्लेषण है। इसमें पुराण की तरह संवादात्मकता है रामलीला की दृश्यात्मकता तथा प्रबंध की काव्यात्मकता है और ये तीनों नहीं भी हैं। नर और नारायण दोनों न केवल परस्परपूरक अपितु परस्परप्रेरक भी हैं। यह चिंतन बहुत अद्भुत है। राम के साथ रामकथा और रामकथा गायक तुलसी के विस्तार की कहानी है। तुलसी जी की रामकथा राम के साथ तुलसी की स्वानुभूति की कहानी है। एक अत्यंत ऊँचाई से आने वाली रामकथा भागीरथी तुलसी के घाट पर आते ही एक वृत्ताकार मोड लेती है कि वह काशी बन जाती है न केवल चित्तकाशी अपितु भावकाशी भी बन जाती है। रामकथा भक्ति का दर्शनशास्त्र न हो कर भक्ति का काव्यशास्त्र है। मानस की भूमिका में आया हुआ रूपक इसका प्रकट प्रमाण है। मानस महाकाव्य के तथाकथित मानदंडों को उत्क्रांत कर आगे बढता है। पंडित जी लिखते हैं कि मानस में महाकाव्य के कई मानदंड छोटे पड़ जाते हैं. पंडित जी लिखते हैं –''तुलसीदास जी की रामकथा की विशेषता यह है कि रामकथा की मिति, उसका माप राम से नहीं होता, उसका माप होता है राम के द्वारा संचारित ऐसी चिंता से जो राम की उपस्थिति से उद्भासित हो जाती है। तुलसी की रामकथा का हृदय है अयोध्यावासी राम और उस हृदय की आत्मा है चित्रकूट। तुलसीदास का रामचरित मानस एक साथ सरोवर, नदी, सागर और सागर से उठकर बादल का अनवरत वृत्त बना रहेगा।''

पंडित जी ने तुलसी के राम के धर्म का विचार किया है। पुराणों में धर्म को विराट पुरुष का वक्षःस्थल कहा जाता है। अधर्म को उस पुरुष की पीठ माना जाता है। विराट की सत्ता के अनुकूल किया जाने वाला कर्म धर्म कार्य है तो उसके प्रतिकूल किया जाने वाला कर्म अधर्म है। विराट का अर्थ समग्र जीवन है। राम मापे नहीं जा सकते इसका रहस्य समझाते हुए पंडित जी ने कहा है कि राम का एक ही माप है, जो उनकी सुनते हैं, उनकी भावना करता है इससे कोई तात्पर्य नहीं है, हाँ भावना शरीर के माध्यम से राम का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। अथाह भाव का अनुमान लगना आसान नहीं है, संभव नहीं है लेकिन जब वह भाव रस रूप में प्रकट होता है तब सुनने वाले मनुष्य की आँखों में नमी बनती है। उसकी देह में रोमांच की रंगावली सजती है। मन आत्मविस्मृति का जागरण होता है तो क्षण भर के लिए सही अनुभव होता है कि राम हैं।

धर्म के स्वरूप को समझाते हुए पंडित जी समझाते हैं कि धर्म की एक दूसरी परिभाषा है कि जो चलाए लेकिन उसका कुछ गंतव्य अवश्य हो। वह गंतव्यहीन संचालन न हो, दिग्विहीन संचालन न हो, केवल चलना, केवल चूहा–दौड़ न हो। वह

चलना हो और साथ ले चलना हो। बिना साथ ले चलने का जो भाव लेकर जो चलना होता है वह चलना धर्म नहीं है। सबको सहभागी बनाए हुए चलना है और उस चलने की दीक्षा धर्म है। अधर्म से उन्नति बहुत शीघ्रता से होती है। आदमी बड़े अच्छे दिन देखता है और अपने विरोधियों पर विजय–पर–विजय प्राप्त कर चला जाता है। यह एक तात्कालिक आभास होता है क्योंकि जब विनाश होता है तब 'समूलस्तु विनश्यति' जब नाश होता है तब मूल सहित नाश होता है। धर्म का बीज अक्षय होता है, गीता की भाषा में 'बीज अव्ययं' होता है। बीज अमर होता है कभी विनष्ट नहीं होता है। वह तो सतत् है, निरंतर जन्म है, निरंतर अंकुरण है। इस अंकुरण को राह देखने पर पाया जाता है, बाट जोहने पर पाया जाता है, झेलने की आवश्यकता होती है, प्रतीक्षा करनी होती है यह इसलिए कि इसमें विवेक होता है और जब विवेक होता है तब उसमें सुख–दुःख सहजता से ही जुडे हुए होते हैं। राम का चरित्र भले ही दुःखमय हो लेकिन है वह विवेकोदय याने कि विवेक को जगाने वाला, विवेक को उत्पन्न करने वाला है राम का जीवन। राम की प्रतीति होना याने धर्म का प्रत्यय जागना आसान काम नहीं है क्योंकि धर्म की प्रतीति होना सहजता की प्रतीति होना है। सहजभाव एक व्यापक स्थिति है। इसमें आदमी यह विचार करता है कि वह छोटे–छोटे घरौंदों में नहीं घिर सकता। पूरी धरा अपनी होने का भाव और बोध ही सहजता है।

विवेक के स्वरूप के रहस्य को समझाते हुए पंडित जी लिखते हैं कि धर्म को समझने के लिए एक उच्च स्तरीय विवेक की आवश्यकता होती है, द्वैत की पहचान जरूरी होती है। उस विवेक का अर्थ है दर्द की पहचान। रामकथा गायकों के कार्य को महत्वपूर्ण मानते हुए पंडित जी ने समझाया है कि उन्होंने देश में जो कार्य संपादन और संपन्न किया है वह संचार साधन नहीं कर पाए हैं। कथा की अन्विति में समझाते एक कथा में स्वाद जगाते हुए एक कौतुक उत्पन्न करते हैं। कथावाचक रामकथा का अंत होने ही नहीं देता है। इसलिए तुलसीदास जी ने कहा है '**रामकथा के मिति जग नाहीं**'। हम सभी लोग रामकथा के अंग हैं। धर्म राम के समान ही एक मंगलमय अवस्था है।

संदर्भ :
1. पं. विद्यानिवास मिश्र रचनावली खंड 6 पृष्ठ 113
2. उपरोक्त पृष्ठ 121
3. उपरोक्त पृष्ठ 126
4. उपरोक्त पृष्ठ 127
5. उपरोक्त पृष्ठ 139
6. उपरोक्त पृष्ठ 134

34 बी, कृष्णांवरी, सरस्वती कॉलोनी, शहादा नंदुरवार महाराष्ट्र
मो. 9403848907

कृति समालोचन

संतोष खन्ना

रामचरितमानस की विचार सम्पदा

डॉ. शकुंतला कालरा ने 'विनयपत्रिका के कथ्य और शिल्प' पर एक पुस्तक लिखी तो 'विनय पत्रिका' पर एक अन्य पुस्तक 'विनयपत्रिका का भाव और कलागत मूल्यांकन' शीर्षक से भी एक अन्य पुस्तक लिखी है। उनकी एक पुस्तक 'मध्ययुगीन हिंदी कविता में निर्गुण–सगुण तत्व समन्वय' पर भी एक पुस्तक है। इस पुस्तक से स्पष्ट है कि जब कोई 'मध्ययुगीन हिंदी साहित्य पर लेखनी चलाता है तो उसमें राम काव्य की चर्चा और विवेचन के बिना इस विषय के साथ न्याय नहीं हो सकता है। राम काव्य संबंधी उनकी एक अन्य पुस्तक प्रकाशित है 'मैथिलीशरण गुप्त और तुलसीदास (चिंतन और कलागत् साम्य तथा प्रभाव') तथा 'मैथिली शरण गुप्त का राम और कृष्ण काव्य' पर उनकी एक अन्य पुस्तक भी प्रकाशित है। इन सबके अलावा, उनकी एक और महत्वपूर्ण पुस्तक है 'रामचरितमानस की प्रासंगिकता', इस पुस्तक में उन्होंने रामचरितमानस की प्रासंगिकता के अनेक आयामों को आधार बनाकर विवेचन किया है ।

रामचरितमानस के विचार संपदा पर चिंतन मनन करते हुए डॉ शकुंतला कालरा ने सबसे पहले रामचरितमानस में प्रतिपादित अध्यात्म और दर्शन की विस्तार से पड़ताल की है। वह लिखती हैं कि सामान्यतया दर्शन का प्रयोग आलोचनात्मक व्याख्यान, तार्किक पर्यवेक्षणता या वेदांत आदि चिंतन संप्रदायों के लिए होता है। अपने पारिभाषिक अर्थ में दर्शन 'तत्वज्ञान', 'आत्मज्ञान' या 'परमात्म तत्व' है। तुलसीदास ने दर्शन के लिए 'तत्व विचार' और दार्शनिक के लिए तत्वदर्शी आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

उनके अनुसार परमात्मा रुप ब्रह्म राम उनके अंश भूत जीव और जगत उनके भक्ति साधनों का सम्यक् ज्ञान दर्शन है। रामचरितमानस और उनकी अन्य काव्यगत कृतियों में उन्होंने इन्हीं विषयों का निरूपण किया है। तुलसी के राम में सगुण और निर्गुण स्वरूप दोनों ही समाहित हैं। राम वस्तुतः सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वकालिक ब्रह्म का ही स्वरूप है तथा उनके लिए सगुण और निर्गुण में कोई भी

भेद नहीं है। वे रामचरितमानस में बार–बार यही कहते हैं –

सगुनहि अगुनहि नई कुछ भेदा।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।।

तुलसीदास के निर्गुण निराकार ब्रह्म ही साकार रूप धारण करते हैं। भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में 'यदा यदा धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत' कहकर निर्गुण के साकार रूप धारण कर असुरों, अधर्मियों आदि का नाश करने की बात कही है और इस प्रकार अवतार लेकर प्रभु धर्म की संस्थापना करते हैं। निर्गुण के साकार रूप धरने के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास कहते हैं –

व्यापक विश्वरूप भगवाना।
तेहि धरि देह चरित्तकृत नाना।।
सो केवल भगतन हित लागी।
परम कृपालु प्रनत अनुरागी।।

रा.च.मां |.1 / 13 / 2 –3

निर्गुण के साकार अवतार लेने का एक उद्देश्य यह भी हैं कि ईश्वर अवतार लेकर लीला करते हैं और मनुष्य मात्र के सामने अपनी लीला के माध्यम से मानव मूल्यों की स्थापना करते हैं।

इस ग्रंथ के अगले अध्याय में मुख्यतः भक्ति भावना के बारे में तुलसीदास के विचारों का प्रतिपादन किया गया है। आरम्भ में डॉ. शकुंतला कालरा ने भक्ति की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार किया है। उनके अनुसार भक्ति किसी व्यक्ति के अपने आराध्य देव के प्रति निरंतर स्नेह का नाम है। वेदों में कर्म ही भक्ति है। शांडिल्य के भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर विषयक परानुरक्ति भक्ति है। नारद भक्ति सूत्र में ईश्वर के प्रति परम प्रेम भक्ति है। रामानुजाचार्य ने भक्ति की दार्शनिक व्याख्या करते हुए भक्ति के बारे में कहा है कि स्नेहपूर्वक किया गया अनवरत ध्यान ही भक्ति है। तुलसीदास ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है –

प्रीति राम सों नीतिपथ, चलिय राम रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहे भक्ति की रीति।।

इस परिभाषा में राग को जीतना और नीति मार्ग पर चलना ही भक्ति है। गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति को भवसागर पार उतरने का एक महत्वपूर्ण साधन बताया है। उनके अनुसार भक्ति समस्त अविद्या और माया का नाश करने वाली और अनुपम सुखों का मूल है। उन्होंने ज्ञान की तुलना में भक्ति को सरल और सहज बताया है। तुलसीदास जी का भक्ति सिद्धांत समन्वय की भावना पर आधारित है। उन्होंने निर्गुण और सगुण भक्ति को बराबर की मान्यता देते हुए भी सगुण भक्ति की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। अगले दो आलेख भी रामचरितमानस में आये प्रसंग पर आधारित हैं। भगवान राम वनवास के दौरान जब वाल्मीकि के आश्रम में आते हैं और उनसे पूछते हैं कि कृपा कर मुझे बताएं कि मैं कहां पर्णकुटी बनाकर सीता और लक्ष्मण के साथ सुविधापूर्वक निश्चित अवधि तक रह सकता हूँ। इस प्रश्न को सुनकर वाल्मीकि तो जानते हैं कि राम ब्रह्म और सर्वव्यापक भगवान हैं हालांकि व्यावहारिक दृष्टि से वाल्मीकि उन्हें चित्रकूट का पता बता देते हैं किंतु वेदांत की भाषा में वह उनसे कहते हैं कि वह अपने सभी भक्तों के हृदय में वास करते हैं। इस संदर्भ में वाल्मीकि ने चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन करते हैं और उस संदर्भ में लेखिका ने पहले आलेख का शीर्षक बनाया है –

जाहि न चाहिअ कबुहु कछु,
तुम्ह सन सहज स्नेहू।
बसहुं निरंतर तासु मन,
सो रेउर निज गेहुं।।

अर्थात् जिस भक्त को इश्वर से कुछ नहीं चाहिए वह उसपर सहज स्नेह करते हैं, ऐसे ही निष्काम भक्त के ह्रदय में वास कीजिए।

इस पुस्तक के अंतिम आलेख में लेखिका ने रामचरितमानस में भारतीय जीवन मूल्यों के बारे में लिखा है। उनके अनुसार रामचरितमानस भारतीय मानव मूल्यों का अनुपम कोष है। इस में तो कोई संदेह नहीं है कि तुलसीदास का साहित्य विशेष रूप से रामचरितमानस में प्रतिपादित मानव मूल्य भारत की सनातन संस्कृति के वह सार्वभौमिक मूल्य हैं जो भारत को एक महान देश बनाते हैं। इन्हीं मानव मूल्यों के कारण भारत विश्व गुरु कहलाया। जब तुलसीदास ने अपने महान महाकाव्य मानस में भगवान राम और अन्य पात्रों के माध्यम से इन सर्वोत्कृष्ट मानव मूल्यों को जब समाज के सामने प्रस्तुत किया तो भारत का जन समुदाय जो सदियों से इन मानव मूल्यों को जी रहा था, उसका तत्काल ही रामचरित मानस के साथ तादात्म्य स्थापित हो गया और वहीं संबंध अब भी बना हुआ है और अगर कभी इन मानव मूल्यों से दूर छिटक जाता है तो समाज में हानिकारक भाव जाता है जैसा कि आजकल देखने को मिल रहा है। ऐसी स्थिति में यह जरूरी हो जाता है कि समाज में इन मानव मूल्यों को पुनः उतारा जाये। लेखिका ने इस महत्वपूर्ण विषय पर यह पुनीत कार्य किया है और उनका सतत प्रयास रहा है कि जनमानस को इन मानव मूल्य को याद दिलाया जाये।

रामचरितमानस में समाहित मानव मूल्यों को जिन सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है वह बहुत ही श्लाघनीय है–

'रामचरितमानस के समान सम्मति – प्रदायक और कोई ग्रंथ विश्व में नहीं है। मानस के रूप में तुलसीदास की दिव्य वाणी उनका पवित्र लोक विधायक संदेश भावी पीढ़ियों के लिए महत् सांस्कृतिक जीवन का विराट संकेत है। उनके मानस में पारिवारिक संस्कारों का बड़ा प्रखर आलोक है जो हर युग में अपना प्रकाश बिखेरता आया है और जिसकी दीप्ति मानव को आज भी मार्गदर्शन कर रही है!'

डॉ शकुंतला कालरा का राम काव्य पर रचित यह ग्रंथ एक ऐसा दीप स्तंभ है जो मानव मात्र का सदा पथ आलोकित करता रहेगा। इसके लिए लेखिका साधुवाद की पात्र हैं।

प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक विधि पत्रिका

तिनका कबहुँ ना निंदिये, जो पाँवन तर होय...।
कबहुँ उड़ी आँखिन पड़े, तो पीर घनेरी होय...।।

अर्थात् कभी भी तुच्छ से तुच्छ को भी बुरा भला नही कहना चाहिए क्योंकि प्रत्येक मनुष्य, वस्तु इत्यादि का अपना एक महत्व होता है। कबीर जी उदाहरण देते हुए कहते हैं कि एक तिनका जो सदैव मनुष्य के पाँव के नीचे रहता है उसे भी कभी तुच्छ नहीं समझना चाहिए क्योंकि जब कभी वह उड़ कर आँख में चला जाता है तो असहनीय पीड़ा का कारण बन जाता है

समीक्षा

गोस्वामी तुलसीदास के समकालिक दुर्लभ काव्य कृति

समीक्षा	: सुदामा चरित्र (काव्य कृति)
संपादक	: गंगा प्रसाद बरसैंया और श्याम सुंदर दुबे
प्रकाशक	: अनुज्ञा बुक्स दिल्ली 32
मूल्य	: रु. 500

डॉ गंगा प्रसाद गुप्त और डॉक्टर श्यामसुन्दर दुबे के संपादन तथा सत्येन्द्र शर्मा के सह सम्पादन में विक्रम बिलगइयाँ कृत 'सुदामा चरित्र' जो वर्ष 1667 विक्रमी में लिखी गई थी, के 400 से अधिक वर्ष बाद वर्तमान संवत 2082 में इसका प्रकाशित होना एक चमत्कार से कम नहीं है। हिन्दी साहित्य में अब तक अज्ञात कवि विक्रम बिलगइयां द्वारा बुंदेली प्रधान लोकभाषा में रची हस्तलिखित पांडुलिपि युक्त यह कविता पुस्तक सुदामा चरित केंद्रित है। सघन चेष्टा से प्राप्त इसकी दुर्लभ हस्तलिखित पांडुलिपि बरसैंया जी लगभग आधी सदी से सहेज कर अपने पास रखे हुए थे। विस्मृत साहित्यकार सम्बंधी इस शोध पर उन्होंने पूर्व में यथास्थान बहुत कुछ लिखा और इस रचना की प्राचीनता तथा इसके मौलिक भावों पर अपनी आशंका व्यक्त की है। जैसाकि श्री बरसैयां जी स्वयं बताते हैं, सुदामा चरित्र की लंबी परंपरा में सम्वत 1602 में नरोत्तम,सम्वत 1683 में आलम कवि, सम्वत 1731 में कालीराम, संवत 1799 में माखन कवि, सम्वत 1853 में गोपाल कवि, सम्वत 1813 में प्राणनाथ, संवत् 1890 में बालक दास फकीर, सम्वत 1900 में हलधर और 1919 में महाराज दास आदि अनेक उल्लेखनीय नाम हैं परंतु इस कृति की कथा विशेषतायेँ और कवि विक्रम की मूल उद्‌भावनायें जैसे सुदामा का पत्नी से वार्तालाप, उनकी रोचक यात्रा, मार्ग में शिव पार्वती से भेंट, द्वारका वैभव वर्णन, कृष्ण दरबार का वर्णन, सुदामा कृष्ण मिलन प्रसंग तथा तंदुल भेंट आदि इसकी मौलिकता की परिचायक हैं।

इस कृति और कृतिकार की अपनी प्रमाणिकता स्वयं कवि विक्रम ने निम्न पंक्तियों में वर्णित की है

सम्वत सोरा सै सहस चौंसठ वर्ष विचार।
मांस दामोदर त्रयोदसी सुकल पच्छ गुरुवार।।
कहै विक्रम कविराय सरद रित अति सुंदर वर।
कीनौ कथा प्रसंग सुधाता है संवत् सर।।

सुदामा चरित श्रीमद् भागवत कथा के अंतिम सोपान के रूप में सर्वत्र ख्यात है। यह मित्रता, दैन्यता, भगवत्ता आदि भावों के विस्तार की अनंत संभावना युक्त है। इस प्रकार यह लघुता के विराट में लय के लालित्य का अनुगान भी है।

कवि विक्रम ने इसमें मानवीय भावों का उचित

समावेश किया है। उनके सुदामा निश्छल, यथार्थ, वास्तविकता पूर्ण और सामान्य धरती वासी हैं। द्वारका से लौटते हुए वे कृष्ण के वैभव को भुला कर अपनी दैन्यावस्था का स्वयं भी तिरस्कार करने से नहीं चूकते। उन्हें इस बात का पछतावा कसकता है कि कृष्ण ने एक अच्छा वस्त्र जो पहिनने को दिया था वह याद कर उसे भी भूलकर खाली हाथ अपने घर लौट रहे हैं –

एक दियो कटि को पटका

बिसरे उतही मति मंद हमारी।

125 पृष्ठ की इस संपादित कृति में शुद्ध मूल पाठ के अनंतर बहुत प्रामाणिक काव्यार्थ और बुन्देली भाषा के शब्दार्थ–संकेत दिए गए हैं। इस प्रकार यह पुस्तक सामान्य पाठकों सहित शोधार्थियों और सभी साहित्य सेवियों को संपादक त्रयी और विशेष रूप से बरसैंया जी का एक अमूल्य उपहार है जिसके लिए हिन्दी साहित्य को उनका ऋणी होना चाहिए।

प्रभुदयाल मिश्र,
प्रधान संपादक तुलसी मानस भारती,
श्यामला हिल्स भोपाल–२

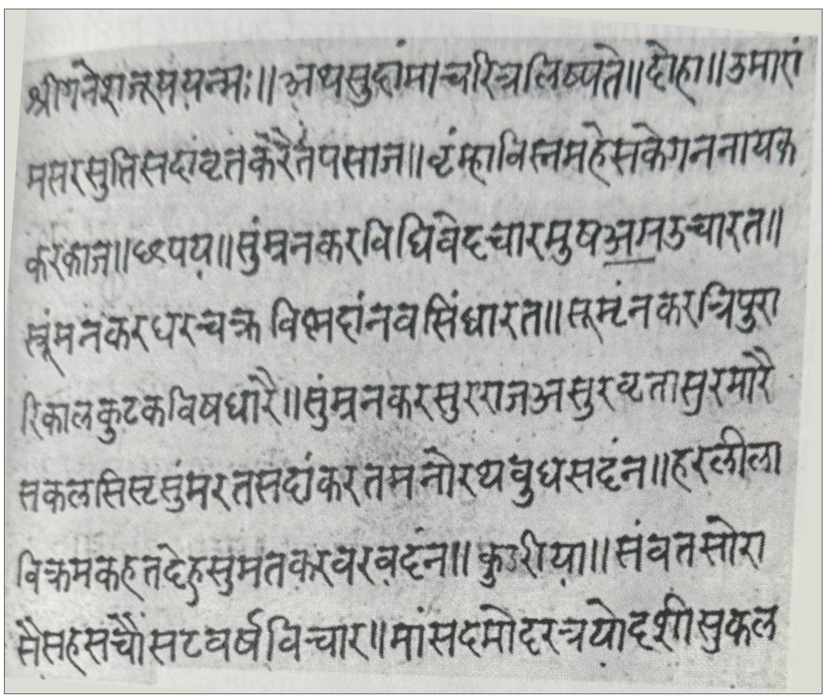
श्रीगनेशायनमः॥ अथसुदामाचरित्रलिष्यते॥ दोहा॥ उमारं
मसरसुतिसदांध्रतकैरैतेपसाज॥ रंम्हाबिस्नमहेसकेगननायक
करिकाज॥ छपय॥ सुमरनकरविधिवेदचारमुषअमउचारत॥
सुमरनकरधरचक्र विस्वदांनवसिंधारत॥ सुमरंनकरत्रिपुरा
रिकालकुटकविषधारे॥ सुमरनकरसुरराजअसुरवृतासुरमारे
सकलसिद्धसुमरतसदांकरतमनोरथबुधसदंन॥ हरलीला
विक्रमकहतदेहुसुमतकरवरबदंन॥ कुंडरीया॥ संवतसोरा
सैसहसचौंसटवर्षविचार॥ मांसदमोदरत्रयोदशीसुकल

पाण्डुलिपि का प्रथम पृष्ठ

मानस भवन में वेदान्त के सिद्धांत ग्रन्थ पंचदशी (पंचम अध्याय) एवं सनत सुजातीय चिंतन सप्ताह सान्निधि स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

(तिथि 9 अक्टूबर से 15 अक्टूबर 2016)

तुलसी मानस प्रतिष्ठान एवं महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् के संयुक्त तत्वावधान में मानस भवन के पं.रामकिंकर उपाध्याय सभागार में प्रातः वेदान्त के सिद्धात ग्रन्थ पंचदशी के महावाक्य विवेक संबंधी पंचम अध्याय पर विशद् व्याख्या करते हुए अपने प्रवचन में स्वामी जी ने कहा कि महावाक्य विवेक की प्रक्रिया के द्वारा सभी समस्याएं हल हो जाती हैं। आपने श्रीमद् भगवत गीता का उदाहरण देते हुए कहा कि अर्जुन की बात लें तो उसकी समस्या युद्ध की नहीं थी। युद्ध कैसे करूं यह भी नहीं थी। उसकी समस्या थी कि अपनों के साथ युद्ध कैसे करूं? भगवद्गीता में इस संदर्भ में वर्णन आया है कि अर्जुन ने एक भी साधना नहीं की। उसने न कर्मयोग किया न योग किया। बल्कि केवल ''मैं'' के बारें में गलत धारणा थी उसको ठीक कर दिया, इसी को विवेक कहते है जिसके द्वारा किसी भी प्रकार की भ्रान्ति हमारी समझ में न रहे। जिस ज्ञान में भ्रान्ति होती है, संशय होता है, उस ज्ञान को अज्ञान कहते है।

पूज्य स्वामी जी ने कहा कि हमारे अन्तकरण में कर्म और उपासना का दुराग्रह बैठा हुआ है। वह न तो देहात्म भाव और न ही जीवात्म भाव से अलग हुआ है। अतः इनसे अलग हो जाना ही परम तत्व की प्रप्ति है। सांध्यकालीन अपने प्रवचन में सनतकुमार के धृतराष्ट्र को दिये गये उपदेश सनत सुजातीय ग्रन्थ पर प्रवचन में आपने कहा कि मोह ही मृत्यु है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मन से इसी मोह को दूर किया। आपने कहा कि मोह के क्षय को मोक्ष कहते है। तथा यदि हम अपने स्वरूप को पहचान लेते है तो हमें जन्म–मृत्यु का भय नहीं रहता है। हम साक्षात आनंदस्वरूप है। जो कहीं आता जाता नहीं है ऐसा बोध होना ही आत्म स्वरूप में स्थित हो जाना कहलाता है।

जीव और ब्रह्म के एकत्व को समझने के पूर्व ज्ञान के वास्तविक स्वरूप को समझना आवश्यक है। वेदान्त की परिभाषा में ईश्वर को ब्रह्म कहा गया है। योग में परमात्मा और भक्ति में भगवान के रूप में जाना जाता है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है जो अनंत है, जिसका न आदि है, न मध्य है, न अंत है। ऐसी बुद्धि होने पर हम चैतन्य के प्रकाश में चेतन तत्व की प्राप्ति कर लेते है। अतः मन के द्वारा बुद्धि के द्वारा जो भी कर्म योगियों के द्वारा किये जाते हैं, वे अन्तःकरण की शुद्धि के लिये किये जाते हैं। जगत की वस्तुओं की प्राप्ति के लिये नहीं किये जाते हैं। इसलिए हमारे कर्म चित्त की शुद्धि के लिये और उपासना चित्त की एकाग्रता के लिये की जानी चाहिए यदि हम ऐसा कर रहे हैं तो समझिये कि साधक की दिशा सही है।

आपने कहा कि बुद्धि का उपयोग हम

सकारात्मक रूप से करें। यदि सही उपयोग नहीं कर पाये तो वह बुद्धि हमारे विनाश का कारण बनती है। बुद्धि में विचार दो प्रकार से आते है, चिन्तन और चिन्ता से चिन्ता हमें नष्ट करती है और चिन्तन से हम विचार प्रक्रिया को ठीक कर सकते है।

अपूर्ण ज्ञान यह है कि यह देह मैं हूँ। अपूर्ण ज्ञान है जितना आंखों से दिखता है उतना ही रंग रूप है। जितना कानों से सुनाई देता है शब्द है। जितना मन से महसूस होता है उतने ही अनुभव है। अर्थात् जब हम अपने इन्द्रिय मन और बुद्धि की कमियों को लेकर उसे ही पूर्ण मानना प्रारंभ करते है तब इस भ्रान्ति को अज्ञान कहते है। आपने कहा कि जिस ज्ञान में अन्दर और बाहर सत्य माना जाता है उसे संसार कहते हैं। देह के कारण हम है जबकि वास्तविकता यह है कि हमारे कारण देह है। आपने कहा कि अज्ञान को दूर करने के लिये हम उस गुरु की आवश्यकता है जिन्होंने परंपरा से शास्त्रों का अध्ययन किया है जिनकी ज्ञान में निष्ठा है। जिन्होंने अनुभव से सीखा है और उसे अपने जीवन में अनुभव भी किया है। ऐसे गुरु से ही हमारी समस्याओं का समाधान हो सकता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता के संबंध में आपने कहा कि हमारी दृष्टि में विद्युत का प्रकाश विभिन्न उपकरणों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तब हमारा ध्यान उन उपकरणों की ओर जाता है। जबकि उनसे अभिव्यक्त होने वाला प्रकाश एक है। ऐसे ही परमात्मा भी एक है।

स्वामी जी ने ईश्वर के प्रकट होने के संबंध में कहा कि जब हम भीतर से खाली हो जाते हैं तो हमारे हृदय में ईश्वर प्रकट हो जाता है। हमारी देह जड़ है। जो कुछ होता है वह केवल मन को होता है। यह समझ में आगया तो समझिये हमने अध्यात्म में प्रवेश कर लिया है। हमें अपनी अनुभूतियों से सीखना है। वह अनुभव जिसमें शब्द के अभाव का अनुभव होता है। वह हम है। यह जानकर हमें अपनी बुद्धि को भगवान के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए।

संसार में रहते हुए न कुछ खोना और न कुछ पाना की समझ आ जाये तो समझिए हमारा अध्यात्म पथ की साधना का शुभारंभ हो गया है। जब हम चिंतन करते हैं तब धीरे धीरे जगत की स्थूल वस्तुएँ, व्यक्ति इत्यादि हम पर प्रभाव डालना कम कर देती हैं। इसे ही हम दूसरे शब्दों में अध्यात्म में देहात्म भाव की निवृत्ति कहते है। इसका लाभ यह है कि जगत से अप्रभावित होकर हम कभी दुःखी नहीं होते है। जैसे–जैसे ज्ञान की सूक्ष्मता बढ़ती जाती है तभी हमें शास्त्रों का सार तत्व समझ में आ जाता है। तब हम अपने मन पर नियंत्रण करने की भी क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। शास्त्रों को समझने के लिये भाषा के साथ–साथ हृदय की आंतरिक शुद्धि भी परम आवश्यक है तभी हमें समझ में आता है कि कर्म सिद्धान्त अपने जीवन में परिवर्तन लाने के लिए है। हमारे जीवन की हर समस्या के लिए हम स्वयं जिम्मेदार है। कोई अन्य नहीं है। ऐसी समझ आने से किसी समस्या पर हम दूसरों को दोष नहीं देते है और हमारा दुःख कम हो जाता है।

स्वामी अनुभवानंदजी ने कहा कि वेदान्त के चार महावाक्यों (प्रज्ञानं ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि, तत् त्वम् असि और अयम् आत्मा, ब्रह्म) का सार यह है कि व्यक्तिगत आत्मा (जीव) और परम सत्ता (ब्रह्म) एक ही हैं। केवल ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस ज्ञान का अनुभव करना भी आवश्यक है। वेदान्त को केवल सिद्धांत के रूप में

नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक शैली के रूप में अपनाये तभी जीवन सरल और सहज होगा। वेदान्त को जीवन में उतारने के लिए, हमें दूसरों के प्रति अनादर या द्वेष की भावना नहीं रखनी चाहिए।

उन्होंने अपने प्रवचन में इस बात पर जोर दिया हैं कि अज्ञान ही हमें अपने वास्तविक स्वरूप (ब्रह्म) से दूर रखता है। महावाक्यों का चिंतन करके हम इस अज्ञान को दूर कर सकते हैं। यह केवल दार्शनिक सिद्धांत न रहें, बल्कि दैनिक जीवन के अनुभव और आचरण का हिस्सा बने, जिससे व्यक्ति अज्ञान से मुक्त होकर अपने वास्तविक, आनंदमय स्वरूप को जान सके।

सांध्यकाल सनत सुजातीय विषय पर स्वामी अनुभवानंदजी ने प्रवचन में सनातन धर्म और वेदांत के सार को सरल, व्यावहारिक और विनोद शैली में कहा कि अद्वैत वेदांत का सार एवं एकत्व का दर्शनः इनमें सभी रूपों और रंगों के पीछे एक ही चेतना है। जब हम अपने आप को इस अद्वितीय परमात्मा के रूप में पहचान लेते हैं, तो सभी से हमारा व्यवहार उसी दर्शन पर आधारित होता है। तब हमें अपना–पराया का भेद नहीं होता। हां यह बात अलग है मनुष्य ने यह भ्रम अपने मन में बना रखा है। वेदांत को अपने जीवन व्यवहार में उतारने के लिये सबसे पहले यह सिद्वान्त बहुत जरूरी है कि हमारे लिए कोई अपना या पराया नहीं होता। यह भावना केवल हमारे मन में होती है, संतों के मन में नहीं। स्वामीजी ने कहा 'मैं' के पीछे एक ही अखंड चैतन्य है, जो सभी चेतनाओं के पीछे भी मौजूद है और जो अलग नहीं होता। अपने सामाजिक व्यवहार में वेदांत को उतारने के लिए महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति अपने मन के संतुलन को कभी न बिगड़ने दे।

वे कहते हैं कि परमात्मा स्वयं ही सभी में प्रकट हो रहा है। आप स्वयं परम ब्रह्म परमात्मा हैं, भले ही आप यह चाहें या न चाहें। यह सहज अनुभव करके जाना जा सकता है।

समापन दिवस पर विशद् व्याख्या करते हुए कहा स्वामी अनुभवानंदजी ने कहा कि कर्म करते हुए इसका प्रभाव कैसा होना चाहिए इसके लिए भगवान शंकराचार्यजी कहते है कि भाषा का व्यवहार विचारों का आदान–प्रदान होता है। क्या बोल रहे है यह महत्व का है। यहां कर्म का तात्पर्य यह है कि हम सबके जीवन में एक विशेषता है। पर हम दूसरों के जीवन के सुख–दुख का विश्लेषण करते रहते हैं। कर्म का सिद्धान्त है कि हम जीवन में सुख–दुख के लिये हम स्वयं जिम्मेदार है। कर्म करने के लिये सर्वप्रथम हमारा अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिए। राग, द्वेष कोई लाजिक नहीं है जबकि हमारा संपूर्ण जीवन इसी के सहारे चलता है। अपनी अच्छाई के साथ अन्य की तुलना करें तो हम भी अर्जून की तरह मोह रोग से ग्रस्त होगें। अपनी अच्छाई का दूसरों के साथ तिरस्कार करना ठीक नहीं है। प्रभु का अनुग्रह है कि हमारे अन्तकरण मे अच्छाई विद्यमान होती है। मन रूपी दर्पण को सदा साफ रखना चाहिए। इस जगत में जानने योग्य सिर्फ ''मैं'' हैं चिन्तन योग्य बात है कि मां बच्चे से प्रेम नही करती बल्कि मां के हृदय में बच्चे के लिये हमेशा ही प्रेम विद्यमान होता है।

पूज्य महाराजश्री का स्वागत कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा ने पुष्पमाला से किया। अपने स्वागत उद्बोधन में कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा ने संस्था की गतिविधियों एवं कार्यक्रम की जानकारी देते हुए पूज्य स्वामीजी का छह

दिवसीय गीता तत्वज्ञान एवं उपनिषद सनत सुजान विषय पर सारगर्भित प्रवचनों के लिये आभार प्रगट किया साथ ही आगागी वर्ष के लिये पूज्य स्वामीजी से पुनः पधारने की प्रार्थना की। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि पूज्य स्वामी ने वेदान्त के सिद्धान्त ग्रंथ पंचदशी महावाक्य एवं सनत सुजातीय विषय पर छह दिन अत्यंत सरल, सहज वाणी में व्याख्यान प्रस्तुत किये। गत् 17–18 वर्षों से पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य में वेद, गीता, उपनिषदों का सुंदर सरल व्याख्यान सुनने को मिलता रहा है।

दिनांक 9 अक्टूबर 2025 को कार्यक्रम के शुभारंभ में पूज्य स्वामी अनुभवानन्दजी, श्री रघुनंदन शर्मा,कार्याध्यक्ष, श्री प्रभुदयाल मिश्र, अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, श्रीमती किरण अग्रवाल, श्रीमती सुशीला शुक्ला ने दीप प्रज्जवलन कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। इस अवसर पर तुलसी मानस भारती पत्रिका के अक्टूबर माह अंक का विमोचन पूज्य महाराजश्री के करकमलों द्वारा किया गया।

कार्यक्रम में विभिन्न दिवस पूज्य महाराजश्री का स्वागत श्री रघुनंदन शर्मा कार्याध्यक्ष, सचिव श्री कैलाश जोशी, देवेन्द कुमार रावत, संपादक तुलसी मानस भारती, श्री संजीव अग्रवाल, श्रीमती किरण अग्रवाल, श्री एम.आर.गुप्ता एवं श्रीमती इन्दिरा गुप्ता, श्री कमल किशोर, श्री राकेश अग्रवाल,एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर श्रीमती अल्पना बंसल, श्री प्रभुदयाल मिश्र, अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम एवं अन्य पदाधिकारी श्री जे.पी. व्यास, निलिम्प त्रिपाठी, श्रीमती सुशीला शुक्ला ने किया।

दिनांक 12 अक्टूबर 2025 को महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् की ओर से डॉ.मोहन गुप्त पूर्व कुलपति महर्षि पाणनी संस्कृत विश्वविद्यालय उज्जैन को महर्षि अगस्त्य अलंकरण सम्मान से सम्मानित किया गया।

दिनांक 14 अक्टूबर 2025 को पूज्य स्वामीजी का शाल, श्रीफल एवं पुष्पमाला से महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम् के अध्यक्ष प्रभुदयालजी मिश्र, श्री रघुनंदन शर्मा, कार्याध्यक्ष, सचिव श्री कैलाश जोशी, श्रीमती सुशीला शुक्ला, श्री महेश दुबे, निदेशक पंडित रामकिंकर उपाध्याय पुस्तकालय एवं शोध संस्थान, श्री अरूण गुप्ता उपस्थित थे।

कार्यक्रम में सुधी श्रोतागणों की बड़ी संख्या में उपस्थिति रही। कार्यक्रम का विभिन्न दिवस एवं सत्र में संचालन श्री देवेन्द्र कुमार रावत एवं प्रभुदयाल मिश्र ने किया।

सूचना प्रकोष्ठ, मानस भवन, भोपाल

स्वामी जी द्वारा वर्ष 2026 के भोपाल के सत्रहवें वार्षिक सप्त दिवसीय सत्संग के लिए 26 अक्टूबर से 31 अक्टूबर की तिथियाँ निश्चित की गई हैं। स्वामी जी के वर्ष 2026 के 365 दिन के कार्यक्रमों मे भी वे यथावत् संदर्शित हैं ।

डॉ. मोहन गुप्त, पूर्व कुलपति, पणिनी संस्कृत विश्वविद्यालय उज्जैन को महर्षि अगस्त्य अलंकरण प्रदान करते हुए पूज्य स्वामी जी एवं अन्य सदस्यगण

सुधी श्रोतागण

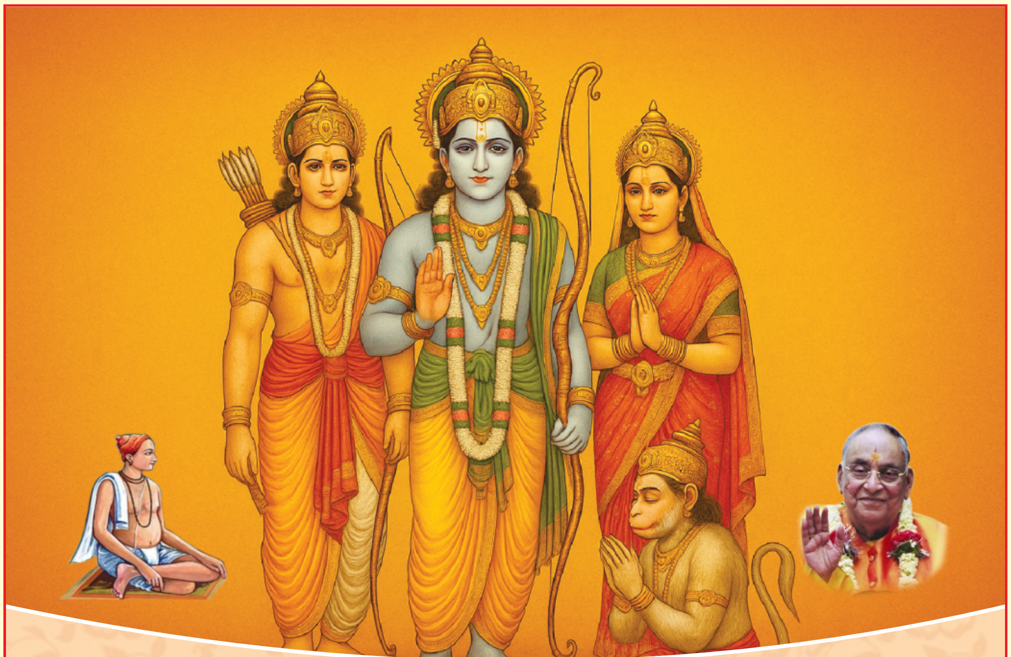

पं. गोरेलाल शुक्ल स्मृति समारोह

।। श्री रामकथा ।।

पद्मभूषण पं. रामकिंकर उपाध्याय जी के प्रिय शिष्य

पं. उमाशंकर शर्मा (व्यास)

के श्रीमुख से।
आप सभी सपरिवार इष्टमित्रों सहित
सादर आमंत्रित हैं।

2 दिसम्बर से 6 दिसम्बर 2025

प्रतिदिन संध्या 6:30 बजे
स्थान : मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल-2

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश का प्रतिष्ठा आयोजन

स्वामी-तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, प्रकाशक श्री रघुनंदन शर्मा और मुद्रक श्री राधिका प्रकाशन प्रा. लि., 26-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, ज़ोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल 462011 से मुद्रित और तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, भोपाल से प्रकाशित।
प्रधान संपादक : प्रभुदयाल मिश्र एवं संपादक : देवेन्द्र कुमार रावत